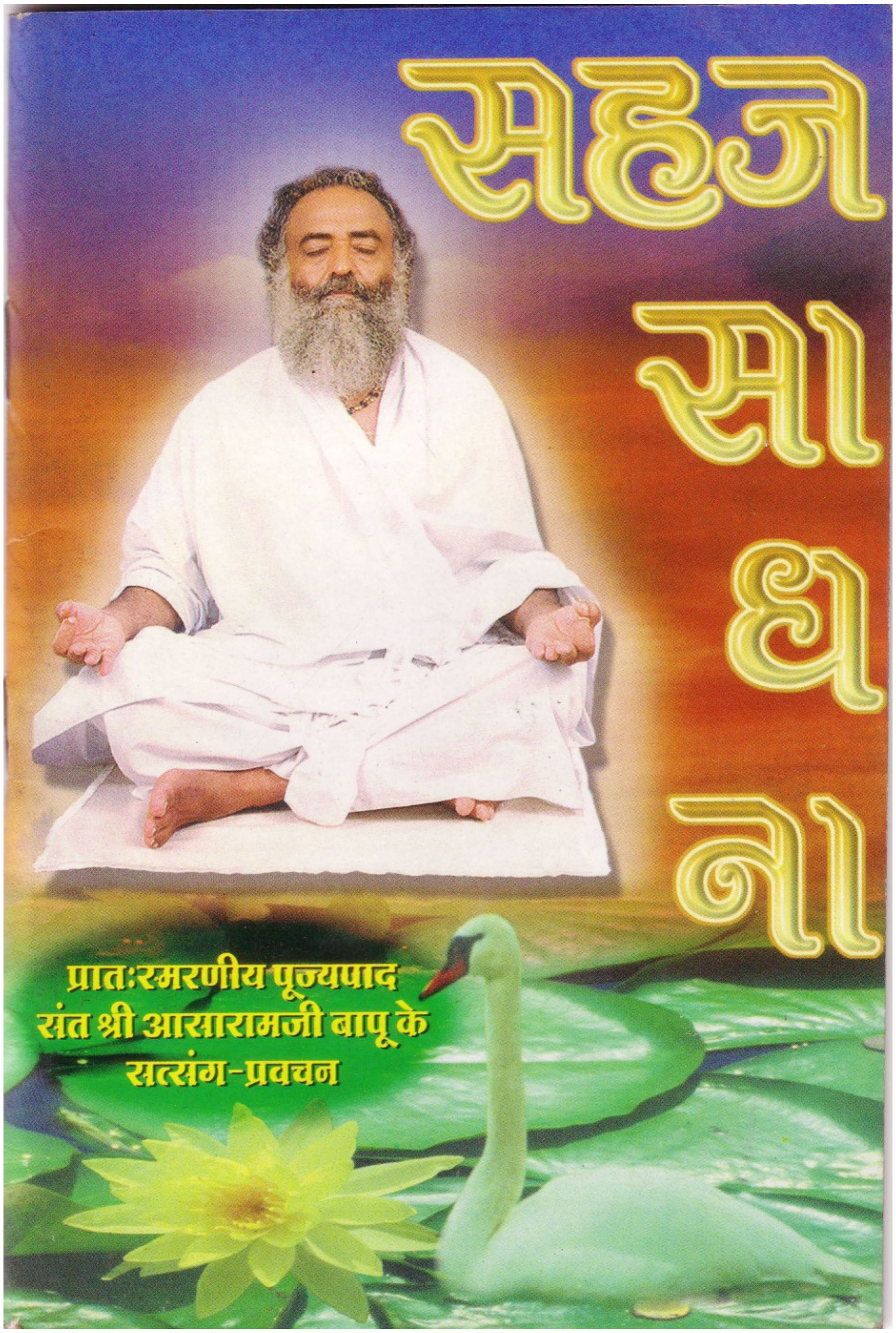

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग–प्रवचन

सहज साधना

ब्रह्मचर्य रक्षा हेतु मंत्र

ॐ नमो भगवते महाबले पराक्रमाय
मनोभिलाषितं मनः स्तंभ कुरु कुरु स्वाहा।

रोज दूध में निहारकर २१ बार इस मंत्र का जप करें और दूध पी लें। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। स्वभाव में आत्मसात् कर लेने जैसा यह नियम है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ब्रह्मचर्य रक्षा हेतु मंत्र 2
निवेदन 3
ईश्वरीय विधान और सहज साधना 5
परम शांति का प्रस्थानबिन्दुः श्रद्धा 18
सनातन सत्य की विभावना 25
वेदान्तका सत्संग–प्रसाद 30
सेवाभगत और मेवाभगत 37
मोहमुदगरः आत्मविचार 38
ध्यान–प्रसाद 43
......तो कुछ नहीं तुमने किया 46

निवेदन

बात वही असर करती है जो दिल से निकलती है। रटी रटायी बातों का हमारे दिलों पर वह प्रभाव नहीं पड़ता जो प्रभाव आत्मारामी सत्पुरूषों की अनुभवमूलक वाणी का पड़ता है। वे महापुरूष अपनी अमृतवाणी से मन्द और म्लान जगत को तेजस्वी और कांतिमान बनाते हैं..... मन–बुद्धि के बन्धन में फँसे हुए साधकों मन–बुद्धि से पार परमेश्वर तत्त्व में जगाते हैं। उनके करूणामय हृदय से निःसृत वाणी का प्रभाव अनूठा होता है।

ऐसे ही एक सत्पुरूष पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज की हृदय वाणी का स्रोत श्रोताजनों को, भक्तों को और आध्यात्मिक राह के पथिकों को, साधकों को परिप्लावित करके पावन बनाता है। वे कहते हैं–

".....ईश्वरीय विधान को न जानने से ही सारे दुःख दर्द आते हैं। ईश्वरीय विधान हमारी उन्नति चाहता है। किसी भी व्यक्ति, वस्तु, प्राणी, पदार्थ में हम आबद्ध हुए तो ईश्वरीय विधान हमें वहाँ से ऊपर उठाने के लिए विघ्न बाधाएँ और दण्ड देकर भी सावधान कर देता है। जो प्रेम परमात्मा से करना चाहिए वह प्रेम अगर किसी व्यक्ति, वस्तु, पद से किया तो ईश्वरीय विधान हमें वहाँ से बलात् घसीट लेता है। अतः ईश्वरीय विधान को समझकर सहज मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर रहो।"

"......श्रद्धालु पुरूष ही परम तत्त्व के ज्ञान को उपलब्ध होता है।"

".....लोग पूछते हैं कि आपके मत में सबसे बड़ा धर्म कौन–सा है ? भाई ! मत मति के होते हैं। सारी मतियाँ जहाँ से प्रकाश पाती हैं वह परमात्मा सबसे बड़ा है। वही वास्तव में सत्य है।"

"..... जिन्होंने अपने कानों से परमात्मा की कथा नहीं सुनी उनके कान साँप के बिल के समान हैं। जिन्होंने अपने मुख से परमात्मा का नाम नहीं लिया उनकी जिह्वा दादुर (मेढक) की जिह्वा के समान है।"

"......ईश्वर की सृष्टि में सब मंगलमय विधान है। पुरूष अगर मोह करके पुत्र–परिवार को अपना मानता हुआ उलझता है तो उसकी बुद्धिमान स्त्री स्वयं मोहरहित होकर पति के मोह को भी युक्ति से निकाल सकती है। सिंधवर्की खूबचन्द की घटना से यह ज्ञात होता है।"

“......सच्चा साधक, सत्शिष्य प्रतिष्ठा या सुविधा नहीं चाहता। वह तो सेवा के लिए ही सेवा करता है। सेवा से जो सुख और प्रतिष्ठा स्थायी बनती है वह सुख और प्रतिष्ठा चाहनेवालों के भाग्य में कहाँ से ? वह तो चाहरहित शिष्य को ही प्राप्त होती है।”

अंतरात्मा में विश्रांति पाये हुए स्थितप्रज्ञ महापुरूष अपने साधकों को अपने अंतर्मन में आत्मज्ञान का मनन करने का मार्गदर्शन देते हैं। ऐसी अनूठी दिव्य वाणी का संग्रह आपके करकमलों में प्रस्तुत करते हुए हम आनन्दित हैं।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अमदावाद आश्रम

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ईश्वरीय विधान और सहज साधना

एक होता है ऐहिक विधान और दूसरा होता है ईश्वरीय विधान। ऐहिक विधान ऐहिक लोगों के द्वारा बनता है और संचालित होता है। जैसे राज्य सरकार अपना विधान बनाती है, नगरपालिका अपना विधान बनाती है, कुटुम्ब–परिवार अपना विधान बनाता है, राष्ट्र अपना विधान बनाता है। यह है ऐहिक विधान।

ऐहिक विधान में भिन्नता होती है क्योंकि जिस राष्ट्र के, जिस राज्य के, जिस नगर के जिस प्रकार के लोग होते हैं उस प्रकार का विधान उनको अच्छा लगता है।

ऐहिक विधान बनाने वाले कभी भूल भी कर लेते हैं और कई अमल करने वाले घूस भी खा लेते हैं। ऐहिक विधान का उल्लंघन करने वाला कई बार बच भी जाता है। 'इन्कमटैक्स... सेलटैक्स' के कानून से कई लोग युक्ति करके बच भी जाते हैं।

दूसरा होता है ईश्वरीय विधान। ईश्वरीय विधान गाँव–गाँव के लिए, राज्य–राज्य के लिए, देश–देश के लिए, राष्ट्र–राष्ट्र के लिए अलग नहीं होता। अनन्त ब्रह्माण्डों में एक ही ईश्वरीय विधान काम करता है, वह एक ही समान ही होता है। देवों का विधान, दैत्यों का विधान और मनुष्यों का विधान अलग हो सकता है लेकिन सब जगह ईश्वरीय विधान एक ही होता है।
ईश्वरीय विधान को समझकर जीने से साधना सहज में हो जाती है।

ईश्वरीय विधान के अनुकूल जो चलता है वह ईश्वर की प्रसन्नता पाता है। जैसे सरकार के विधान के खिलाफ चलने वाला आदमी सरकार द्वारा दण्डित होता है ऐसे ही ईश्वरीय विधान के खिलाफ चलने वाला जीव दण्डित होता है। ईश्वरीय विधान के अनुसार चलने वाला जीव ईश्वर का प्यारा हो जाता है और उसको ईश्वरीय विधान सहाय करता है। खिलाफ चलने वाले को ईश्वरीय विधान पचा–पचाकर सबक सिखा देता है, रूला–रूलाकर सबक सिखा देता है, दुःख पीड़ा, दर्द देकर सब सिखाता है। तलवार की धार पर चलने के लिए मजबूर करता है।

ऐहिक विधान में छूटछाट है। कभी उसमें पोल चल जाती है लेकिन ईश्वरीय विधान में पोल नहीं चलती। ईश्वरीय विधान को समझकर स्वीकार कर लेने वाला आदमी शीघ्र सफल हो जाता है। ईश्वरीय विधान का अनादर करने से अथवा ईश्वरीय विधान के अज्ञान से आदमी को बहुत सहन करना पड़ता है।

हम जब जब दुःखी होते हैं, जब–जब अशांत होते हैं, जब–जब भयभीत होते हैं तब निश्चित समझ लो कि हमारे द्वारा ईश्वरीय विधान का उल्लंघन हुआ है। जब–जब हम प्रसन्न होते हैं, निर्भीक होते हैं, खुश होते हैं, निश्चिन्त होते हैं तब समझ लो कि अनजाने में भी हमने ईश्वरीय विधान का पालन किया है।

दुर्योधन जब जन्मा था तब गीदड़ बोल रहे थे, अपशकुन हो रहे थे। गांधारी ने धृतराष्ट्र से कहा थाः "यह लड़का कुल का नाश करेगा, फेंक दो इसको।" किन्तु धृतराष्ट्र ने इन्कार कर दिया।

धर्मात्मा पुरूष भी जब–जब ईश्वरीय विधान के अनुकूल चलते हैं तो सुख पाते हैं और प्रतिकूल चलते हैं तो वे भी मारे जाते हैं। कृपाचार्य, भीष्म–पितामह, द्रोण आदि अधर्म की पीठ ठोक रहे थे। अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गई। किसने मारी ? इसके पीछे दुर्योधन कारणभूत था।

जब धार्मिक जन भी अधर्म की पीठ ठोकता है तब वह भी ईश्वरीय विधान का अपमान करता है। अतः उसे भी ईश्वरीय विधान के अनुसार सहन करना ही पड़ेगा।

दुर्योधन, जयद्रथ आदि अनाचार करते थे तो अर्जुन का खून उबल उठता था लेकिन युधिष्ठिर अर्जुन को दबाते थे.... दबाते थे.... दबाते थे। दबते-दबते अर्जुन विषाद से भर गया था। आदमी बहुत दबता है तो उसे हिस्टीरिया का रोग होता है। हिस्टीरिया का रोग और तन्दुरुस्ती इन दोनों के बीच एक अवस्था होती है। अर्जुन उस अवस्था में आ गया था। युद्ध के मैदान में भी वह हृदय की दुर्बलता, मोह और उस रोग से आवृत हो गया था।

आदमी जब भावुक होता है और उसे दबाया जाता है अथवा अति दुःखों में वह दबता है, हताश बना रहता है तो उसकी दुर्बल भावुकता को डाँट-फटकारकर निकालना और उसमें साहस और उत्साह भरना ही उसकी दवाई है। भावुक बच्चों की मूर्खतापूर्ण भावनाएँ पोसने से उनकी उन्नति नहीं होती।

श्रीकृष्ण अर्जुन से इसीलिए कहते हैं-

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

'हे अर्जुन ! तू नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।'

(गीताः २.३)

धर्म के नाम पर जब कायरता होती है और ईश्वरीय विधान का उल्लंघन करते हैं तो हानि ज्यादा होती है।

गांधारी जानती थी कि यह पाप का पुतला है मेरा बेटा। द्रौपदी-वस्त्रहरण के प्रसंग में सारी सभा देख रही थी। रजस्वला अवस्था में आयी हुई एकवस्त्रा द्रौपदी के बाल पकड़कर दुःशासन भरी सभा में घसीट ले आया। दुर्योधन अपनी जाँघ पर बिठाने के लिए ललकारता है। वेश्या कहकर कर्ण द्रौपदी का अपमान करता है। दुःशासन ने भरी सभा में कौरव वंश के तमाम महानुभावों के सामने द्रौपदी के चीर खींचे उसे नग्न करने के लिए, फिर भी कोई बोला नहीं। सब देखते रहे। ऐसा हलाहल अन्याय करने वाले दुष्ट लोगों के प्रति जब पांडव कुछ प्रतिक्रिया करते हैं तो वे दुष्ट लोग नीति-मर्यादा की बातें सुनाने लगते हैं, धर्म की दुहाई देते हैं।

युद्ध के मैदान में जब कर्ण के रथ का पहिया फँस गया तब वह उसे निकालने के लिए नीचे उतरा। उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अब मौका है। उसको गिरा दे। अर्जुन ने सरसंधान किया तब कर्ण बोलता हैः "यह धर्मयुद्ध नहीं है। रुको.... मैं निःशस्त्र हूँ और मेरे पर शस्त्र चलाते हो ?" इस प्रकार कर्ण धर्म की दुहाइयाँ देने लगा।

श्रीकृष्ण ने कहाः "अब तू धर्म की दुहाइयाँ देता है? तब कहाँ था जब कौरव सभा में द्रौपदी की क्रुर निर्भर्त्सना हो रही थी ? उस समय तेरा धर्म कहाँ गया था?"

कभी-कभी तो लुच्चे राक्षस लोग भी आपत्तिकाल में धर्म की दुहाई देने लग जाते हैं। आपत्तिकाल में धर्म की दुहाई देकर अपना बचाव करना यह कोई धर्म के अनुकूल चलना नहीं है। आपत्तिकाल में भी अपने धर्म में लगे रहना चाहिए, ईश्वरीय विधान में सहमत होना चाहिए।

ईश्वरीय विधान यह है कि तुम्हारी तरक्की होनी चाहिए, तुम्हें विकास-यात्रा करनी चाहिए, जीवन में उन्नत होना चाहिए।

भूगोल, विज्ञान तथा प्राणी के गर्भाशय की प्रक्रियाओं से यह सिद्ध हो चुका है कि तमाम जीवसृष्टि में मनुष्य आखिरी सर्जन है। गर्भावस्था में समय-समय पर गर्भ का निरीक्षण करके विज्ञानी लोग इस निष्कर्ष पर आये कि गर्भाशय में जीव-जन्तु, मेढक, बन्दर आदि की आकृतियाँ धारण

करते–करते आखिर में जीव मनुष्य आकृति को धारण करता है। हमारा सबका मन इन सब यात्राओं में घूमकर आया है। मानव योनि में आने के बाद भी अगली योनियों की कुछ जड़ता रह गई है। उस तमस को हटाने के लिए मानव जन्म में जीव को बुद्धि थोड़ी विशेष दी गई। उस हल्के स्वभाव पर विजय पाकर अपने स्व–स्वभाव में जगने के लिए मौका दिया गया। इस बुद्धि का उपयोग करके आप विकास करते हैं तो आपके ईश्वरीय विधान का आदर किया है ऐसा माना जायेगा। आपकी तरक्की हो जायेगी। आपमें पहले के जो कुछ संस्कार हैं वे जोर नहीं करेंगे। आप जन्म–मरण से मुक्त हो जाएँगे। ईश्वरीय विधान का प्रयोजन है आपकी तरक्की करना। अगर आप जड़ता को पोसते हैं, तरक्की करने से इन्कार करते हैं, आलस्य प्रमाद करते हैं, पुराने कुसंस्कारों को, गन्दी आदतों को, जीवभाव को, देहाध्यास को, शरीर की विलासिता को, पाशवी वृत्तियों को पकड़ रखते है, नश्वर चीजों और सम्बन्धों में आबद्ध होते हैं, तो आपको ईश्वरीय विधान के डण्डे लगेंगे। जहाँ–जहाँ आपकी ममता है, आसक्ति है, वहाँ से आपको कड़ुए फल मिलेंगे, फिर वह ममता–आसक्ति चाहे पत्नी पर हो, पुत्र पर हो, देह पर हो, जिस पर भी हो।

यह ईश्वरीय विधान का उद्देश्य है कि आप तरक्की कीजिए। ईमानदारी से सजग होकर तरक्की करते हैं, ममता और आसक्तिरहित होकर **बहुजनहिताय बहुजनसुखाय** कर्म करते हैं, तो ईश्वरीय विधान आपको सहाय करता है, आप ईश्वरीय प्रसन्नता पाते हैं। आपके लिए मुक्ति के द्वार खुल जाते हैं, जीते जी मुक्तता का अनुभव होता है। आप भोग, विलास और अहं पोसने में लगकर संयम, सदाचार और आध्यात्मिक उन्नति से, मुँह मोड़ते हैं और वहीं के वहीं पड़े रहते हैं तो हानि होती है। कालचक्र रुकता नहीं है।

पेड़, पौधे, वनस्पति में भी तरक्की है। कीट–पतंग, पशु–पक्षी आदि भी तरक्की करते–करते मानव देह में आते हैं। जब मानव देह मिल गई, बुद्धि मिल गई फिर भी आप विकसित नहीं हुए तो ईश्वरीय विधान आपको फिर से चौरासी लाख योनियों के चक्कर की सजा दे देता है। आप ईश्वरीय विधान के अनुकूल नहीं चलते हैं तो ईश्वरीय विधान आपके चित्त में भय पैदा कर देता है, अशांति पैदा कर देता है। आपको जो बुद्धि दी है वह वापस समेट लेता है।

ईश्वरीय विधान है कि सबमें एक ही चैतन्य है और एक ही में सब है। औरों के स्वरूप में दिखने वाले लोग आपके ही स्वरूप हैं। उनके साथ आत्मीयता से व्यवहार करते हैं तो आपकी उन्नति होती है। शोषण की बुद्धि से व्यवहार करते हैं तो आपकी अवनति होती है। दिखने में भले ही धन, सत्ता, वैभव पाकर आप उन्नत दिखें, सचमुच में भीतर की शांति, निर्भयता, आनन्द, सहजता आदि दैवी गुण क्षीण होने लगेंगे। देर–सबेर ईश्वरीय विधान आपको शोषण, कपट आदि दोषों से दूर करने के लिए सजा देकर शुद्ध करेगा। अतः ईश्वरीय विधान की सजा मिलने से पहले ही सजग हो जाओ।

ईश्वरीय विधान का पालन करने और करवाने के दैवी कार्य में आप लगते हैं तो आपकी बुद्धि, आपकी योग्यता, आपकी क्षमता बढ़ती है। आप मानों अभी खाली हाथ हैं और ईश्वरीय विधान के अनुसार चलते हैं तो जहाँ भी कदम रखेंगे वहाँ आपके इर्दगिर्द सब सामग्रियाँ और उन सामग्रियों को सँभालनेवाले सेवक और सामग्रियों का उपयोग करके आपका अनुसरण करने वाले लोग आपके सम्मुख हाजिर हो जाएँगे।

यही फर्क है जनसाधारण और संत पुरूषों में। संत पुरूष खाली हाथ घूमते–घामते आ जाते हैं, अपना आसन जमा देते हैं, बैठ जाते हैं ईश्वर में तल्लीन होकर। बाकी सब उनके इर्द–गिर्द हो जाता है। जिनके पास सब कुछ है, सत्ता है, राज्य है, धन है, उनमें वे चिपके रहते हैं भावी की चिन्ता करके विदेशी बैंकों में धन इक ा करते रहते हैं तो ईश्वरीय विधान का उल्लंघन होता है। उनकी नजरों

में सबका हित नहीं है लेकिन सबका शोषण करके अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हैं। इस प्रकार वे ईश्वरीय विधान का अनादर करते हैं तो उन्हें अपना पद छूट जाने का भी भय होता है, प्रतिष्ठा खो जाने का भी भय होता है, मरने का भी अति भय होता है। अन्त में भयभीत होते–होते जीवन जीने का भी मजा खो बैठते हैं बेचारे। वे जो कुछ संग्रह करते हैं ? पैसे, मकान, गाड़ियाँ आदि..... उन सबका आनन्द वे नहीं ले पाते। उनका फायदा ड्राइवर, नौकर–चाकर और बैंकें ले लेती हैं। तुम अगर बाह्य वस्तुओं से अधिक प्रेम करते हो या किसी व्यक्ति का आधार ज्यादा लेते हो या किसी सत्ता या पद से आबद्ध होते हो तो उस वस्तु, व्यक्ति, पद और सत्ता से घसीटकर हटाये जाओगे। अतः सावधान ! मिथ्या संबंधों को, नश्वर पदों को, वस्तुओं को इतना प्रेम न करो कि प्रियतम को ही भूल जाओ और घसीटे जाओ, ठुकराये जाओ।

भीष्म–पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य जैसे लोग भी जब अधर्म के पक्ष में होते हैं, अधर्मियों की पीठ ठोकते हैं तो ईश्वरीय विधान उनको भी युद्ध के मैदान में ठिकाने लगा देता है।

भगवान तो आये थे धर्म की स्थापना करने के लिए और इतने सारे लोग मारे गये, अठारह अक्षौहिणी सेना खत्म हो गई, कौरव कुल उजड़ गया। यह तो अधर्म हुआ.....!

नहीं..... अधर्म नहीं हुआ। लगता तो है अधर्म हुआ लेकिन धर्म की स्थापना हुई। अगर दुर्योधन मरता नहीं, उसकी पीठ ठोकने वाले नहीं मरते, कौरव पक्ष जीत जाता तो अधर्म की जीत होती। धर्म मर जाता।

युधिष्ठिर धर्म के पक्ष में हुए और धर्म की जीत हुई, धर्म की स्थापना हुई। धर्म की स्थापना करके, ईश्वरीय विधान का आदर करके जीवों के कल्याण का चिन्तवन किया। जीव के कल्याण का मूल क्या है ?

जीव का इन्द्रियों के तरफ खिंचाव है, विकारों की ओर आकर्षण है। कई जन्मों से जीव का यह स्वभाव है। धर्म जीव में नियम ले आता है, संयम ले आता है। ऐसा करना.... ऐसा नहीं करना, ऐसा नहीं खाना, ऐसा खाना..., ऐसा भोगना..... ऐसा नहीं भोगना...... इस प्रकार नियंत्रण करके धर्म जीव को संयमी बनाता है। जीव को जगाकर अपने शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित करना, यह ईश्वरीय विधान का पालन है।

अपने शिवस्वरूप की ओर चलने के लिए प्रकृति ईश्वरीय विधान का पालन कराती है। आदमी ज्यों–ज्यों सीधे ढंग से ईश्वर के स्वभाव में, ईश्वर के ज्ञान में, ईश्वरीय शांति की ओर चलने लगता है त्यों–त्यों उसका जीवन सहज, सुलभ और सरल हो जाता है। ईश्वरीय विधान को समझकर जीने से सहज में साधना हो जाती है। आदमी ईश्वरीय विधान को छोड़कर ज्यों–ज्यों इन्द्रियों को पोसकर, अहंकार को पोसकर, किसी को नोंचकर, किसी को शोषकर जीना चाहता है तो अशान्त रहता है, भयभीत रहता है, मरने के बाद भी घटीयंत्र की नाँईं कई योनियों के चक्कर में जाकर दुःख भोगता है।

आप जब बालक थे, अज्ञ थे तो ईश्वरीय विधान ने आपको ऐहिक विद्या दी। आपमें अश्रद्धा थी तो श्रद्धा थी। श्रद्धा छुपी हुई थी तो ईश्वरीय विधान की परंपरा से आपकी श्रद्धा जागृत हुई। बाल्यावस्था में आपके पास कहाँ था योग, कहाँ थी समझ, कहाँ था कीर्तन और कहाँ थी भक्ति ? यह ईश्वरीय विधान है कि हम उन्नत होते चले आये। जब हम जन्मे थे तब कितने मूढ़ थे... कितने मूर्ख थे ? ज्यों–ज्यों बड़े हुए त्यों–त्यों उन्नत होने के लिए माहौल बन गया, संस्कार मिल गये। यह ईश्वरीय विधान है।

कहाँ तो पानी की एक बूँद से जन्म लेने वाला जीव और कहाँ बड़ा राजाधिराज बन जाता है। कोई बड़ा जोगी, जती बन जाता है ! यह ईश्वरीय विधान है।

सखखर में विलायतराय नाम के एक संत हो गये। सीधा–सादा गृहस्थी जीवन जीते थे। आज कल के गृहस्थी की नाँई काम–विकारों में अपने को खपा देने जैसा मलिन, गृहस्थ जीवन नहीं था उनका। गृहस्थ होते हुए भी संयम, वीर्यरक्षा, एकान्तवास, अन्तर्मुखता आदि में वे ईश्वरीय विधान का पालन करते थे। उनमें आत्मिक शक्तियाँ विकसित हो गई। संकल्प सामर्थ्य आ गया।

लीलाराम नाम का एक व्यक्ति कहीं मुनीमी करता था (हमारे सदगुरूदेव की यह बात नहीं है।) वह कहीं फँस गया। पैसे के लेन देन में कुछ हेराफेरी के बारे में उस पर केस चला। ब्रिटिश शासन में सजाएँ भी कड़क होती थीं। जान–पहचान, लाँच–रिश्वत कम चलती थी। लीलाराम घबराया और विलायतराम के चरणों में आया। विनती की। विलायतराम ने कहाः

"तुमने जो किया है वह भोगना पड़ेगा, मैं क्या करूँ ?"

"महाराज ! मैं आपकी शरण हूँ। मुझे कैसे भी करके आप बचाओ। दुबारा गलती नहीं होगी। गलती हो गई है उसके लिए आप जो सजा करें, मैं भोग लूँगा। न्यायाधीश सजा करेगा, जेल में भेज देगा, इसकी अपेक्षा आपके श्रीचरणों में रहकर अपने पाप धोऊँगा।"

संत का हृदय पिघल गया। बोलेः "अच्छा! अब तू अपना केस रख दे उस शहंशाह परमात्मा पर। जिस ईश्वर के विधान का तूने उल्लंघन किया है उसी ईश्वर की शरण हो जा, उसी ईश्वर का चिन्तन कर। उसकी कृपा करूणा मिलेगी तो बेड़ा पार हो जाएगा।"

लीलाराम ने गुरू की बात मान ली। बस, जब देखो तब शहंशाह..... शहंशाह.... चलते–फिरते शाहंशाह..... शाहंशाह.....! शाहंशाह माने लक्ष्य यही जो सर्वोपरि सत्ता है। मन उसका तदाकार हो गया।

मुकद्दमे के दिन पहुँचा कोर्ट में। जज ने पूछाः

"इतने–इतने पैसे की तुमने हेराफेरी की, यह सच्ची बात है?"

"शाहंशाह...."

"तेरा नाम क्या है?"

"शहंशाह..."

"यह क्यों किया?"

"शहंशाह..."

सरकारी वकील उलट छानबीन करता है, प्रश्न पूछता है तो एक ही जवाबः "शहंशाह..."

"अरे ठीक बोल नहीं तो पिटाई होगी।"

"शंहशाह..."

"यह कोर्ट है।"

"शहंशाह..."

"तेरी खाल खिंचवाएँगे।"

"शहंशाह...."

लीलाराम का यह ढोंग नहीं था। गुरू के वचन में डट गया था। **मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्**...। गुरू के वचन में लग गया। "शहंशाह.... शहंशाह.... शहंशाह...." उसके ऊपर डाँट–फटकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, प्रलोभन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका शहंशाह का चिन्तन ऊपर–ऊपर से थोपा हुआ नहीं था अपितु गुरूवचन गहरा चला गया था उसके अंतर में। वह एकदम तदाकार हो गया था।

जब तुम अपने देह की चिन्ता छोड़कर, सुख–दुःख के परिणामों की चिन्ता छोड़कर परम तत्त्व में लग जाते हो तो प्रकृति तुम्हारे अनुकूल हो जाती है। यह भी ईश्वरीय विधान है। बुद्ध सब भूल

गये, ध्यानमग्न हो गये। ऊपर से च ान लुढ़कती हुई आई और वहाँ आते-आते दो हिस्सों में बँट गई, बुद्ध के दोनों ओर से चली गई। बुद्ध बाल-बाल बच गये।

नरेन्द्र ध्यानमग्न बैठा था। साँप निकला और सब बच्चे तितर-बितर हो गये। साँप नरेन्द्र की गोद में आया और फिर भी काटा नहीं और चला गया। वही बालक नरेन्द्र आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुआ।

आप ज्यों-ज्यों देह से, मन से अधिक गहराई में जाते हैं त्यों-त्यों आपकी सुरक्षा ईश्वरीय विधान के अनुसार होती है।

स्वामी विवेकानन्द एक बार इतने दुःखी हुए, जीवन से इतने ऊबे कि बस, अब रहा नहीं जाता। सोचने लगे कि: "घर भी छोड़ा, जवानी के विलासिता के मजे भी छोड़े और अभी तक भगवान नहीं मिले ? धिक्कार है हमारे जीने को। ऐसा जीवन जीकर भी क्या करना? संन्यासी होकर मुफ्त की रोटी खाना, दूसरों पर बोझा चढ़ाना ! इससे तो अच्छा है इस शरीर का अन्त ला दूँ।"

वे जंगल में चले गये। 'कोई भूखा-प्यासा शेर मिल जाय, उसके सामने अपने आपको धर दूँ ताकि किसी प्राणी के लिए अपने शरीर का उपयोग तो हो जाय !'

विवेकानन्द घने जंगल में पहुँचे। भूखे शेर की दहाड़ सुनाई दे रही थी। चलते-चलते वहाँ पहुँच गये। शेर के नजदीक गये।

"ले ले वनकेसरी ! अपना आहार स्वीकार कर ले।"

ईश्वरीय विधान उनसे कुछ दूसरा ही काम करवाना चाहता था। आप शरीर से ऊपर उठ जाते हो तो आपके शरीर की सुरक्षा प्रकृति कर लेती है।

प्रकृति ने उस भूखे शेर का चित्त बदल लिया। शेर ने विवेकानन्द को खाया नहीं। मीरा को मारने के लिए राणा ने खूब प्रयास किये। जहर भेजा तो भी कुछ नहीं।

ईश्वरीय विधान में हम जितना अडिग रहते हैं उतनी ही प्रकृति अनुकूल हो जाती है। ईश्वरीय विधान में कम अडिग रहते है तो प्रकृति कम अनुकूल रहती है और ईश्वरीय विधान का उल्लंघन करते हैं तो प्रकृति हमें डण्डे मारती है।

जब-जब दुःख आ जाय, चिन्ता आ जाय, शोक आ जाय, भय आ जाय तो उस समय इतना तो जरूर समझ लें कि हमने ईश्वरीय विधान का कोई-न-कोई अनादर किया है। ईश्वर अपमान कराके हमें समतावान बनाना चाहते हैं और हम अपमान पसन्द नहीं करते हैं। यह ईश्वर का अनादर है। ईश्वर हमें मित्र देकर उत्साहित करना चाहते हैं लेकिन हम मित्रों की ममता में फँसते हैं इसलिए दुःख होता है। ईश्वर हमें धन देकर सत्कर्म कराना चाहते हैं लेकिन हम धन को पकड़ रखना चाहते हैं इसलिए 'टेन्शन' (तनाव) बढ़ जाता है। ईश्वर हमें कुटुम्ब-परिवार देकर इस संसार की भूलभुलैया से जागृत होने को कह रहे हैं लेकिन हम खिलौनों से खेलने लग जाते हैं तो संसार की ओर से थप्पड़ें पड़ती हैं।

ईश्वरीय विधान हमारी तरक्की.... तरक्की.... और तरक्की ही चाहता है। जब थप्पड़ पड़ती है तब भी हेतु तरक्की का है। जब अनुकूलता मिलती है तब ईश्वरीय विधान का हेतु हमारी तरक्की का है। जैसे माँ डाँटती है तो भी बच्चे के हित के लिए और प्यार-पुचकार करती है तो भी उसमें बच्चे का हित ही निहित होता है। ईश्वरीय विधान के अनुसार हमारी गलती होती है तो माँ डाँटती है, गलती न हो इसलिए डाँटती है।

जैसे माँ का, बाप का व्यवहार बच्चे के प्रति होता है ऐसे ही ईश्वरीय विधान का व्यवहार हम लोगों के प्रति होता है। यहाँ के विधान बदल जाते हैं, नगरपालिकाओं के विधान बदल जाते हैं,

सरकार के कानून बदल जाते हैं लेकिन ईश्वरीय विधान सब काल के लिए, सब लोगों के लिए एक समान रहता है। उसमें कोई छोटा–बड़ा नहीं है, अपना पराया नहीं है, साधु–असाधु नहीं है। ईश्वरीय विधान साधु के लिए भी है और असाधु के लिए भी है। साधु भी अगर ईश्वरीय विधान साधु के लिए भी है और असाधु के लिए भी है। साधु अगर ईश्वरीय विधान के अनुकूल चलते हैं तो उनका चित्त प्रसन्न होता है, उदात्त बनता है। अपने पूर्वाग्रह या दुराग्रह छोड़कर तन–मन–वचन से प्राणिमात्र का कल्याण चाहते हैं तो ईश्वरीय विधान उनके अन्तःकरण में दिव्यता भर देता है। वे स्वार्थकेन्द्रित हो जाते हैं तो उनका अन्तःकरण संकुचित कर देता है।

ईश्वरीय विधान किसी व्यक्ति विशेष के लिए रियायत नहीं करता। वह चाहता है कि आपकी तरक्की हो। यह प्रक्रिया सतत चालू है। जैसे कालचक्र चलता है ऐसे ही आपकी तरक्की के लिए ईश्वरीय विधान चलता है। तरक्की.... तरक्की... और तरक्की। बस, एक ही उपाय है। आगे बढ़ो... आगे बढ़ो...... नहीं तो मार खाओ।

अपने जीवन में जो जड़ता है, गन्दी आदतें हैं या मोह–ममता है इसको छोड़ना है, आगे बढ़ना है। आगे नहीं बढ़ते हो तो चोटें जरूर खाते हो। जो सावधानी से आगे नहीं बढ़ता है वह मारा जाता है, कुचला जाता है, उसे दुःख भोगना पड़ता है।

धृतराष्ट्र अपनी महत्त्वाकांक्षा को और दुर्योधन अपनी पाप चेष्टा को छोड़ता नहीं है। उसी में दोनों चिपके हैं। लाक्षागृह बनाया, द्यूतक्रीडा खेले, पांडवों को सताया। श्रीकृष्ण समझाने के लिए दूत होकर गये फिर भी नहीं माने। अपनी कुचेष्टा नहीं छोड़ी, आगे नहीं बढ़े तो अपना और अपने साथियों का विनाश किया।

गांधारी ईश्वरीय विधान को जानती तो थी, धर्म का उसे ज्ञान तो था, ईश्वरीय विधान के अनुरूप तो चलती थी लेकिन मोह में ऐसी आ गई कि उसे भी सहन करना पड़ा।

महाभारत का युद्ध चालू था। गांधारी ने दुर्योधन से कहाः "तुझ पर इतनी मुसीबतें आती हैं तो मैं अपने सतीत्व का थोड़ा आशिष तुझे दूँगी। कल सुबह तू आ जाना एकदम दिगम्बर होकर.... जन्म के समय बच्चा जैसा होता है ऐसा बिल्कुल नग्न होकर। मैं अपनी आँख की प ी खोलूँगी। तेरे शरीर पर मेरी प्रथम दृष्टि पड़ते ही तेरा शरीर वज्र जैसा हो जायेगा।"

गांधारी धर्म पर तो थी लेकिन उसका धर्म भी अधर्म की पीठ ठोकता है। अधर्म की पीठ ठोकने से धार्मिक का हित हो जाएगा, ऐसा नहीं है। धार्मिक का भी अहित हो जाता है।

गांधारी की बात पाण्डवों तक पहुँच गई। युधिष्ठिर सिर पर हाथ देकर चिन्तित हो गये कि गांधारी जब दुर्योधन को देख लेगी तब उस पापी की काया वज्र जैसी हो जाएगी, फिर उसका नाश होना असम्भव है। पापी का जब तक नाश नहीं होगा तब तक पापी औरों का नाश करता रहेगा।

श्रीकृष्ण छावनी में आये तो सब चिन्तित। पूछा कि क्या बात है? ....तो पाण्डवों ने बात बताई कि गांधारी दुष्ट दुर्योधन को वज्रकाय बनाने वाली है। उस पापी को गांधारी भी आधार देती है। धर्म अधर्म की पीठ ठोक रहा है।

श्रीकृष्ण हँसने लगे। धर्मराज बोलेः "हे श्रीकृष्ण! हम सब मरे जा रहे हैं और आपको हँसी आ रही है !"

श्रीकृष्ण तो सब जानते हैं। उनके पास हँसी के सिवाय और क्या हो सकता है! उन्हें पता है कि धर्म जब अधर्म की पीठ ठोकता है तब अधर्म पुष्ट तो होता है लेकिन अविनाशी नहीं होता। पुष्ट होकर फिर मरता है।

हम लोग मंदिर में जाते हैं, मस्जिद में जाते हैं, चर्च में जाते हैं, इधर जाते हैं, उधर जाते हैं

लेकिन अपनी चेष्टाओं को धर्म के अनुकूल, ईश्वरीय विधान के अनुकूल करते हैं कि वासनाओं के अनुकूल करते हैं यह जरा जाँचो। अधर्म की ओर चलते हैं तो धार्मिक कहलाने के बावजूद भी अशांत होते हैं। जब हम धर्म के तरफ चलते हैं तब चाहे धार्मिक न भी कहलाएँ फिर भी हममें शांति, सुख, आनन्द, निर्भयता आदि सब सदगुण ईश्वरीय विधान प्रकट कर देता है।

श्रीकृष्ण ने कहाः "तुम चिन्ता मत करो।"

श्रीकृष्ण पाण्डवों का पक्ष लेते हैं और कौरवों से विपरीत चलते हैं ऐसी बात नहीं है। श्रीकृष्ण धर्म का पक्ष लेते हैं। धर्म से आदमी सुखी होता है और धर्म से ही आदमी ईश्वरीय विधान के अनुकूल आगे बढ़ता है। अधर्म से आदमी नीचे गिरता है। लोग निःस्वार्थता छोड़कर स्वार्थपरायण हो जाते हैं। निरहंकारिता छोड़कर अहंकारी हो जाते हैं।

अहंकार का विलय करना यह धर्म है। स्वार्थ का विलय करना यह धर्म है। ज्यों-ज्यों स्वार्थ का विलय करते हैं त्यों-त्यों ईश्वरीय विधान के अनुसार चलते हैं। ज्यों-ज्यों संकीर्णता आती जाती है त्यों-त्यों अधर्म आता जाता है। हृदय जितना-जितना विशाल है, बहुजन हिताय बहुजनसुखाय के लिए हृदय में भावना है उतना-उतना आप धर्म के ज्यादा नजदीक हैं। वह भावना कम है उतना आप धर्म के कम नजदीक हैं और बहुजन हिताय की भावना है ही नहीं..... "मैं और मेरा परिवार" का ही वर्तुल है तो समझो कि ईश्वरीय विधान का उल्लंघन हो रहा है। ईश्वरीय विधान का उल्लंघन हो रहा है इसलिए चिन्ता, भय, शोक, बीमारी, परेशानी आदि पीछे लगे ही रहते हैं।

प्रभातकाल के अंधेरे में नंगा होकर दुर्योधन गांधारी के पास जाने लगा। रास्ते में श्रीकृष्ण पहुँच गये और बोलेः

"भले आदमी! इतना बड़ा युवान पुत्र होकर माँ के पास जा रहा है ऐसा बिल्कुल नंगा! जरा सोच तो सही! वज्रकाय बनना है यह तो ठीक है लेकिन कम से कम अपना गुह्यांग तो ढाँक ले। यह फूलों की माला है। यह माला ही लगा ले कौपीन की जगह पर। अपनी कटि को तो ढाँक दे! ऐसा युवान पुत्र और वह भी युवराज पद पर! हस्तिनापुर का सर्वेसर्वा! .....और ऐसे?"

दुर्योधन शर्म के मारे बैठ गया। श्रीकृष्ण की बात उसे ठीक लगी। माला लेकर कटि बाँध ली। पहुँचा गांधारी के पास। गांधारी ने अपनी बाहर की आँखों पर तो प ी बाँध रखी थी, भीतर भी ममता की प ी बाँध ली। प ी खोलकर संकल्प करके देखती है दुर्योधन की ओर तो....

"अरे! तेरे को कहा था कि नंगे होकर आना। यह माला किसने बँधवाई ? उस वनमाली ने ही तेरे को माला बँधवाई होगी। तेरी और तो सारी काया वज्र की हो गई लेकिन जितना हिस्सा फूलमाला से ढँका है उतना कच्चा रह गया। उतने अंग को सँभालना।"

जब दुर्योधन और भीम के बीच द्वन्द्वयुद्ध हो रहा था, भीषण गदायुद्ध चल रहा था तब दुर्योधन मर नहीं रहा था। उस समय श्रीकृष्ण ने भीम को इशारे से समझाया कि उसको उसी जगह पर ठोक। भीम ने जब वहाँ पर प्रहार किया तब वह पापी गिरा।

यह ईश्वरीय विधान है कि मार खाकर भी आदमी को सुधरना पड़ता है। डण्डे खाकर भी सुधरना पड़ता है और अगर मर गये तो नर्कों में जाकर या इतर योनियों में जाकर भी सुधार की प्रक्रिया तो चालू ही रहती है। आगे बढ़ो... आगे बढ़ो... आगे बढ़ो नहीं तो जन्मों और मरो... मरो और जन्मो.....।

पुण्य क्या है ? पाप क्या है ?

समझो कोई बालक पाँच साल का है। वह पहली क्लास में है तो पुण्य है। बड़ा होने पर भी फिर-फिर से पहली क्लास में ही रहता है तो वह पाप हो जाता है। जिस अवस्था में तुम आये हो

उस अवस्था के अनुरूप उचित व्यवहार करके उन्नत होते हो तो वह पुण्य है। इससे विपरीत करते हो तो तुम दैवी विधान का उल्लंघन करते हो।

जिस समय जो शास्त्र–मर्यादा के अनुरूप कर्त्तव्य मिल जाय उस समय वह कर्त्तव्य अनासक्त भाव से ईश्वर की प्रसन्नता के निमित्त किया जाय तो वह पुण्य है। घर में महिला को भोजन बनाना है तो 'मैं साक्षात् मेरे नारायण को खिलाऊँगी' ऐसी भावना से बनायगी तो भोजन बनाना पूजा हो जायगा। झाड़ू लगाना है तो ऐसे चाव से लगाते रहो और चूहे की नाँई घर में भोजन बनाते रहो, कूपमण्डूक बने रहो। सत्संग भी सुनो, साधन भी करो, जप भी करो, ध्यान भी करो, सेवा भी करो और अपना मकान या घर भी सँभालो। जब छोड़ना पड़े तब पूरे तैयार भी रहो छोड़ने के लिए। अपने आत्मदेव को ऐसा सँभालो। किसी वस्तु में, व्यक्ति में, पद में आसक्ति नहीं। सारा का सारा छोड़ना पड़े तो भी तैयार। इसी को बोलते हैं अनासक्तियोग।

जीवन में त्याग का सामर्थ्य होना चाहिए। सब कुछ त्यागने की शक्ति होनी चाहिए। जिनके पास त्यागने की शक्ति होती है वे ही वास्तव में भोग सकते हैं। जिसके पास त्यागने की शक्ति नहीं है वह भोग भी नहीं सकता। त्याग का सामर्थ्य होना चाहिए। यश मिल गया तो यश के त्याग का सामर्थ्य होना चाहिए, धन के त्याग का सामर्थ्य होना चाहिए, सत्ता के त्याग का सामर्थ्य होना चाहिए।

सत्ता भोगने की इच्छा है और सत्ता नहीं मिल रही है तो आदमी कितना दुःखी होता है । सत्ता मिल भी गई दो–पाँच साल के लिए और फिर चली गई। कुर्सी तो दो–पाँच साल की और कराहना जिन्दगी भर। यही है बाहरी सुख का हाल। विकारी सुख तो पाँच मिनट का और झंझट जीवन भर की।

सत्ता मिली तो सत्ता छोड़ने का सामर्थ्य होना चाहिए। दृश्य दिखा तो बार–बार दृश्य देखने की आसक्ति को छोड़ने का सामर्थ्य होना चाहिए। धन मिला तो धन का सदुपयोग करने के लिए धन छोड़ने का सामर्थ्य होना चाहिए। यहाँ तक कि अपना शरीर छोड़ने का सामर्थ्य होना चाहिए। जब मृत्यु आवे तब शरीर को भीतर से पकड़कर बैठे न रहें। चलो, मृत्यु आयी तो आयी, हम तो वही हैं चिदघन चैतन्य चिदाकाश स्वरूप.... सोऽहं...सोऽहम्। ऐसे त्यागी को मरने का भी मजा आता है और जीने का भी मजा आता है।

पापी आदमी के प्राण नीचे के केन्द्रों से निकलते हैं, गुदाद्वार आदि से। मध्यम आदमी के प्राण नाभि आदि से निकलते हैं। कुछ लोगों के प्राण मुख, आँख, कण्ठ आदि से निकलते हैं। योगेश्वरों के प्राण निरूद्ध होकर तालू से निकलते हैं।

आप जप करते है, ध्यान करते हैं तो आपके मन और प्राणों को ऊपर के केन्द्रों में जीने की आदत पड़ जाती है। प्राण ऊपर के केन्द्रों से निकलते है तो उन्नत हो जाते है। अगर काम–विकार में रहते हैं, भोग भोगने में और खाने पीने में रहते हैं और खाये पिये हुए पदार्थ छोड़ने के अंगों में ही आसक्ति है तो फिर वृक्ष आदि की योनि में जाओ जहाँ नीचे से ऊपर की ओर खींचने की प्रवृत्ति होती है।

वृक्ष अपना भोग पदार्थ नीचे से उठाकर ऊपर ले जाते हैं। पशु आदि सामने से लेते हैं और पीछे फेंकते हैं। मनुष्य है जो भोग–पदार्थों को ऊपर से लेता है, नीचे को फेंकता है और स्वयं ऊपर उठ जाता है।

अर्थात भोगों को नीचे गिराकर आप योग करो। आसक्ति को, पुरानी आदतों नीचे छोड़कर आप ऊपर उठो। यह है विधान का आदर।

ईश्वरीय विधान चाहता है कि तुम ईश्वरीय स्वभाव में जग जाओ। बार–बार गर्भ में जाकर

माताओं को पीड़ा मत दो, अपने को पीड़ा मत दो, समाज को पीड़ा मत दो। मुक्त हो जाओ। आपको जो बुद्धि मिली है उसका विकास करो। ईश्वरीय विधान तुमसे यह भी अपेक्षा करता है कि हर परिस्थिति में तुम सम रहने की कोशिश करो। आपमें और ईश्वर में क्या दूरी है वह जरा खोज लो। आप ईश्वर से मिल लो। कब तक बिछुड़े रहोगे ?

कितना सुन्दर है ईश्वरीय विधान ! उसमें प्राणिमात्र के हित के सिवाय और कुछ नहीं होता। विधान जितना–जितना व्यापक होता है उतना–उतना बहुजन हिताय होता है।

अपने भाग्य के हम आप विधाता होते हैं। रेल की पटरियाँ बनीं फिर रेल का भाग्य बन गया कि वह दूसरी जगह नहीं जा सकती। पटरियाँ उसका भाग्य हैं, गति कम या ज्यादा होना यह उसका पुरूषार्थ है। पटरियाँ जब बन रही थीं तब चाहे जिधर की बना सकते थे।

पूर्वकाल में पटरियाँ बनाना यह भी आपका पुरूषार्थ था और अब उन पटरियों पर चलना भी आपका पुरूषार्थ है। पूर्व के जो सम्बन्ध आपने बना लिये, जो मान्यताएँ बना लीं वे पटरियाँ आपने ही तो डाली। अब नयी जगह पर दूसरी पटरियाँ भी डाल सकते हो और पुरानी पटरियों का सदुपयोग भी कर सकते हो।

“क्या करें महाराजश्री ! अपने भाग्य में लिखा हो तभी संतों के द्वार जा सकते हैं।”

बात ठीक है। संतों के द्वार तक जाने की पटरियाँ तो बन गई हैं लेकिन कितनी गति से जाना यह आपके हाथ की बात है। पटरियाँ तो फिट हो गई हैं। अपनी जीवन की गाड़ी उस पर चलाते हो कि नहीं चलाते, यह भी देखना पड़ेगा।

आपके आज का कर्म कल का प्रारब्ध बन जाता है। कल का अजीर्ण आज के उपवास से ठीक हो जाता है। कल का कर्जा आज चुका देने से मिट जाता है। कल की कमाई आज के भोग–विलास से नष्ट भी हो जाती है। मनुष्य के जीवन में उसके कर्मों के अनुसार उतार–चढ़ाव आते हैं। इसलिए दैवी विधान को दृष्टि समक्ष रखकर कर्म किये जाते हैं तो मजा आता है।

मैं बात बता रहा था विलायतराय और लीलाराम की। कोर्ट में लीलाराम को जो कुछ पूछा जाय तो एक ही जवाबः शहंशाह...... शहंशाह..... शहंशाह......।

जज के चित्त में हुआ कि यह कैसे पागल को पकड़कर लाये हैं। इतना अपमान करते हैं, इतना डाँटते हैं, भय दिखाते हैं, तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हैं तभी भी इस पागल को कुछ पता नहीं चलता है ! जज ने उसको बरी कर दिया।

लीलाराम विलायतराय के पास। गुरू बोलेः “छूट गया केस से बेटा?"

तो लीलाराम बोलता हैः “शहंशाह.....।”

“भूख लगी है ?”

“शहंशाह....।”

“यह कोर्ट नहीं है। अब केस बरी हो गया। अब ठीक से बात करो।”

“शहंशाह....।”

गुरू ने देखा कि बिल्कुल सच्चाई से मेरे वचन लिये हैं..... वाह ! गुरू का हृदय प्रसन्न हो गया। प्रसन्न हो गया तो लीलाराम की शहंशाही पर गुरू का हस्ताक्षर हो गया। गुरू ने कहाः

“अच्छा...। जब जरूरत पड़े तब बोलना ‘शहंशाह....’ अभी तो मुझसे बात कर थोड़ी देर।” गुरू ने संकल्प करके उसके शहंशाह के भाव का थोड़ा नियंत्रण कर लिया। लीलाराम ने भोजन आदि किया और गुरू से प्रार्थना की किः

“अब तो मैं गुरू के आश्रम में ही रहूँगा। सच्चे शहंशाह के दरबार में रहूँगा।”

लीलाराम गुरूआश्रम में रहने लगा। कोई दुःखी, रोगी आ जाता तो गुरू लीलाराम से बोलतेः "इसको जरा देखो।"

देखना क्या है ? उसके सिर पर लीलाराम हाथ घुमा देताः 'शहंशाह....' तो दर्द ठीक हो जाता। पेट में पीड़ा है.... अपने हाथ से कुछ प्रसाद दे देता तो पीड़ा गायब। कमर दुःखती है, बुढ़ापा है। लीलाराम कमर पर हाथ घुमा देताः 'शहंशाह.....' तो कमर शहंशाह हो जाती। धन्धा नहीं चलता है। लीलाराम थप्पड़ मार देताः 'शहंशाह....' उसके धन्धे में नगद नारायण हो जाता।

लीलाराम हाथ घुमाकर 'शहंशाह.....' कह देता और लोगों के काम हो जाते। धीरे-धीरे कीर्ति फैलने लगी।

ईश्वरीय विधान से कीर्ति तो होगी लेकिन कीर्ति में फँसना उचित नहीं। मान तो मिलेगा लेकिन अहँकार करना उचित नहीं। हम अहंकार करने वाले कौन होते हैं? हमारी योग्यता क्या है? सृष्टिनियन्ता इतने सारे ब्रह्माण्ड बना देता है उसमें हमारा एक व्यक्तित्त्व, एक मकान, एक दुकान, एक गाड़ी.... इसमें अहंकार क्या करना? अहंकार करके उस विश्वनियंता से अलग होकर अपनी विशेषता क्या बताओगे? वह विशेषता कब तक रहेगी। आप उससे जुड़े रहो। कितना भी बड़ा कुण्ड हो पानी का लेकिन पानी के किसी मूल स्रोत से जुड़ा नहीं रहेगा तो पानी पड़ा-पड़ा गन्दा हो जायगा, आखिर सूख जायगा। छोटी-सी टंकी भी अगर मूल स्रोत से जुड़ी रहेगी तो पानी निरन्तर ताजा बना रहेगा और कभी खत्म नहीं होगा।

ऐसे ही आप ईश्वर से जुड़े रहोगे तो आपकी ताजगी बनी रहेगी। ईश्वर से अलग अपनी कुछ विशेषता बनाआगे तो वह विशेषता क्षीण हो जायगी। ब्रह्मज्ञान आपको ईश्वर से जोड़े रखता है। देहाध्यास आपको ईश्वर की विशालता से वंचित कर देता है।

लीलाराम ज्ञानी तो था नहीं। आ गया देहाध्यास में। फूल उठा कि गुरू जी जितना नहीं कर सकते उतना हम कर सकते हैं। गुरू जी तो इलाज बताते हैं, साधना बताते हैं, प्राणायाम बताते हैं, आशीर्वाद देते हैं। किसी की ज्यादा श्रद्धा होती है तो वह ठीक होता है। .....और हम तो जिसको कह देते हैं 'शहंशाह....' उसका काम हो जाता है।

गुरू को लगा कि शिष्य अहंकार में आ गया है।

गुरू की आज्ञा मानने से गुरू का चित्त प्रसन्न हुआ। गुरू के चित्त की प्रसन्नता से उसकी शक्ति विकसित हो गई। अनुचित आचरण करने से गुरू के चित्त में क्षोभ हुआ। गुरू के चित्त में शिष्य के लिए क्षोभ होता है तो शिष्य का अमंगल होता है। वह अमंगल कैसे होता है ? कोई दैत्य गला पकड़कर नर्क में नहीं ले जाता। हमारा व्यवहार अनुचित होता है तो अन्तर्यामी ईश्वर को या गुरू के हृदय को ठेस पहुँचती है तो हमारी मति हल्के निर्णय करती है। मति जब हल्के निर्णय करती है तो हल्के कर्मों में गिरती है, फिर हल्का परिणाम आता है और पतन हो जाता है। गुरू का चित्त प्रसन्न होता है तो हमारी मति ऊँची हो जाती है। ऊँची हो जाती है तो ऊँचे निर्णय करती है, ऊँचे कर्म करती है और ऊँचे पद को प्राप्त करती है। ऐसा नहीं कि देवता पकड़कर हमें स्वर्ग में ले जायगा या दैत्य पकड़कर हमें नर्क में ले जायगा। नहीं......। गुप्त रूप से हमारे सब संस्कारों के चित्र अन्तःकरण में अंकित होते रहते हैं। तुम उचित करते हो कि अनुचित करते हो, इसका चित्र भीतर ही भीतर लिया जा रहा है।

लीलाराम अहंकार प्रेरित कर्म करने लगा तो गुरू को पता चला, गुरू के हृदय को ठेस लगी। लीलाराम की मति बिगड़ी। लीलाराम के द्वारा किसी का काम बन गया तो कोई शराब की बोतल ले आया, कोई कुछ ले आया तो कोई कुछ। लीलाराम नशा करने लगा। बुद्धि नीचे गिरी। शराब-कबाब में

वह गर्क हो गया। गुरू के दिल को और ठेस पहुँची।

एक दिन विलायतराय कहीं जा रहे थे। लीलाराम से बोलेः "चलो कहीं घूम आते हैं।" लीलाराम चला। दो–पाँच और शिष्य भी साथ हो लिए। रास्ते में नदी पड़ी। विलायतराय ने कहाः "यहाँ हम स्नान करेंगे।" सेवक ने साबुन दिया। लोटा भर–भर के पानी डाला। गुरूजी लीलाराम से बोलेः "तू भी गोता मार ले, जल्दी कर।"

लीलाराम गोता मारकर बाहर निकलता है तो लीलाबाई हो गया। उसने देखा तो वहाँ न कोई नदी है न गुरूजी हैं।

अकेली लीलाबाई.....! बिल्कुल सुन्दरी लीलाबाई....! अंग स्त्री के, वस्त्र स्त्री के, चूड़ियाँ और जेवर भी आ गये। वह शर्मिन्दा हो गया कि मैं तो लीलाराम था, 'शहंशाह....' करने वाला था। यह क्या हो गया ?

इतने में चार चाण्डाल आते हुए दिखे। उन्होंने पूछाः

"क्यों री ! इधर बैठी है अकेली ? कौन है ?"

अब कैसे बोले कि मैं लीलाराम हूँ ? वह तो शर्मिन्दा हो गया। चारों चाण्डाल झगड़ा करने लगे। एक बोलाः 'इससे मैं शादी करूँगा।' दूसरा बोलाः "मैं करूँगा।" आखिर चारों में जो बलवान था उसके साथ लीलाबाई का गंधर्व विवाह हो गया। गन्धर्व विवाह माने ले भागू शादी...... 'लव–मैरिज'। समय बीता। लीलाबाई को दो तीन बेटे हुए, दो–तीन बेटियाँ हुईं। बेटियों की शादियाँ हुईं चाण्डालों से। दामाद हुए.... परिवार बढ़ा। चाण्डालों में सांसारिक व्यवहार जैसे होता है वह सब हुआ। सुख–दुःख के कई प्रसंग आये और गये। लीलाबाई साठ साल की बूढ़ी हो गयी। बहुत सारे दुःख भोगे। पति मर गया। छोरे लोफर हो गये। लीलाबाई सिर कूटने लगीः "हे भगवान ! मैं क्या करूँ ? पति चला गया। मैं विधवा हो गई। मुझे भी तू उठा ले।"

'मुझे भी तू उठा ले....' करके आँख खोली तो वही नदी और वही स्नान। गुरूजी ने जो साबुन लगाया था सिर पर, उसकी झाग भी पूरी उतरी नहीं थी। लीलाराम चकित हो गया कि मैं लीलाबाई बन गया था, साठ साल की चाण्डाली का सारा संसार देखा, बेटे–बेटियाँ, दामाद और बहुएँ आदि का बड़ा परिवार बना... और यहाँ तो अभी स्नान भी पूरा नहीं हुआ है ! यह सब क्या है ?

विलायतराम मुस्कराते हुए बोलेः

"देख ! शूली में से काँटा हो गया। तेरा चाण्डाल होने का प्रारब्ध तो कट गया। पहले की की हुई भक्ति से, लेकिन अब पहले जैसी शक्ति तेरे पास नहीं रहेगी। वैद्य का धन्धा कर, परिश्रम करके गुजारा करते रहना, मुझे मुँह मत दिखाना।"

ईश्वरीय विधान का हम आदर करते हैं तो उन्नति होती है और अनादर करते हैं तो अवनति होती है। ईश्वरीय विधान का आदर यह है कि हमारे पास जो कुछ है वह हमारा व्यक्तिगत नहीं है। सब उस जगन्नियन्ता का है। हमारा जो कुछ भी है वह हमारा नहीं है। हमारा शरीर भी नहीं है। हवाएँ उसकी, प्रकाश उसका, पृथ्वी उसकी, सूर्य उसका, अन्न–जल उसका। उसी का अन्न–जल खा पीकर हमारे माता–पिता ने हमको जन्म दिया तो यह शरीर हमारा कैसे हुआ ? शरीर भी उसी का है और उसी की हवा लेकर हम जी रहे हैं। उसी का पानी पीकर हम जी रहे हैं। उसी की पृथ्वी पर हम चल रहे हैं।

जो कुछ उसी का है, जो कुछ है उसी के लिए है। हम सब अपना और अपने लिए मान लेते हैं तब ईश्वरीय विधान का अनादर करते हैं। इसी से परेशानी, मुसीबतें आ घेरती हैं। इसी से जन्म–मरण की सजा मिलती रहती है।

हम एक सेकेण्ड भी ईश्वर से अलग नहीं रह सकते, उसकी चीजों से अलग नहीं रह सकते। आपके शरीर में से पूरी हवा निकाल दें तो कुछ मिनटों के लिए कैसा रहेगा ? आप नहीं जी सकते।

आप ईश्वर से तनिक भी दूर नहीं हैं फिर भी उसके साथ आपकी सुरता नहीं मिली है तो दूरी का अनुभव करके आप दुःखी हो रहे हैं। ईश्वर के सान्निध्य का अनुभव हो जाता तो हमारी दुर्दशा थोड़े ही होती ! सदा साथ में रहने वाले अन्तर्यामी का अनुभव नहीं हो रहा है इसीलिए दुःख सह रहे हैं, पीड़ा सह रहे हैं, चिन्ताएँ कर रहे हैं, परेशानियाँ उठा रहे हैं।

हमारी बुद्धि का दुर्भाग्य तो यह है कि जो सदा साथ में है उसी साथी से मिलने के लिए तत्परता नहीं आती। जो हाजरा-हजूर है उससे मिलने की तत्परता नहीं आती। वह सदा हमारे साथ होने पर भी हम अपने को अकेला मानते हैं कि दुनियाँ में हमारा कोई नहीं। हम कितना अनादर करते हैं अपने ईश्वर का !

'हे धन ! तू मेरी रक्षा कर। हे मेरे पति ! तू मेरी रक्षा कर। पत्नी ! तू मेरी रक्षा कर। हे मेरे बेटे ! बुढ़ापे में तू मेरी रक्षा कर।' हम ईश्वरीय विधान का कितना अनादर कर रहे हैं !!

बेटा रक्षा करेगा ? पति रक्षा करेगा ? पत्नी रक्षा करेगी ? धन रक्षा करेगा ? लाखों-लाखों पति होते हुए भी पत्नियाँ मर गईं। लाखों-लाखों बेटे होते हुए भी बाप परेशान रहे। लाखों-लाखों बाप होते हुए भी बेटे परेशान रहे क्योंकि बापों में बाप, बेटों में बेटा, पतियों में पति, पत्नियों में पत्नी बन कर जो बैठा है उस प्यारे के तरफ हमारी निगाह नहीं जाती।

भूल्या जभी रबनू तभी व्यापा रोग।

जब उस सत्य को भूले हैं, ईश्वरीय विधान को भूले हैं तभी जन्म-मरण के रोग, भय, शोक, दुःख चिन्ता आदि सब घेरे रहते हैं। अतः बार-बार मन को इन विचारों से भरकर, अन्तर्यामी को साक्षी समझकर प्रार्थना करते जाएँ, प्रेरणा लेते जाएँ और जीवन की शाम होने से पहले तदाकार हो जाएँ।

ॐ शांति...... ॐ आनन्द...... ॐ....ॐ.....ॐ....।

शांति.... शांति.....। वाह प्रभु ! तेरी जय हो ! ईश्वरीय विधान। तुझे नमस्कार ! हे ईश्वर ! तू ही अपनी भक्ति दे और अपनी ओर शींच ले।

नारायण..... नारायण..... नारायण.....

विधान का स्मरण करके साधना करेंगे तो आपकी सहज साधना हो जायगी। गिरि गुफा में तप करने, समाधि लगाने नहीं जाना पड़ेगा। सतत सावधान रहें तो सहज साधना हो जाएगी। ईश्वरीय विधान को समझकर जीवन जिएं, उसके साथ जुड़े रहें तो सहज साधना हो जाएगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

परम शांति का प्रस्थानबिन्दुः श्रद्धा

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति॥

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के, तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शांति को प्राप्त हो जाता है।'

(भगवदगीताः ४.३१)

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ जो ज्ञान कहते हैं वह परमात्म-तत्त्व के ज्ञान से सम्बन्धित है। एक होता है ऐहिक ज्ञान और दूसरा होता है वास्तविक ज्ञान। वास्तविक ज्ञान की सत्ता से ही ऐहिक ज्ञान की गाड़ी चलती है। वास्तविक शुद्ध ज्ञान की सत्ता लेकर ही हमारी इन्द्रियाँ, हमारा मन सब अलग-अलग दिखाकर, भेद की कल्पना करके व्यवहार करते हैं। जब तक यह जीव वास्तिवक ज्ञान में टिकता नहीं तब तक उसे परम शांति नहीं मिलती। जब तक परम शांति नहीं मिली तब तक इस जीव के जन्म-मरण के दुःख, मुसीबतें और कष्ट का अन्त नहीं आता।

आधिदैविक शांति और आधिभौतिक शांति याने मानसिक शांति, ये शांतियाँ तो बेचारी कई बार आती हैं और चली जाती हैं। जब आत्मज्ञान होता है, आत्म-साक्षात्कार होता है तब आध्यात्मिक शांति, परम शांति का अनुभव होता है। एक बार परम शांति मिली तो वह जाती नहीं।

लब्ध्वा ज्ञानं परां शांतिम्.....।

परम शांति कब और कैसे आती है ?

अचिरेणाधिगच्छति।

ज्ञान हुआ कि परम शांति आ गई। उसमें समय नहीं लगता।

ज्ञान पाने के लिए भगवान साधन बता रहे हैं-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

कई बार हमें कहा जाता है कि, बस, 'श्रद्धा करो.... मान लो... कुछ बोलने की जरूरत नहीं है।' हम श्रद्धा करें और हमारी श्रद्धा का कोई उपयोग कर ले, दुरूपयोग कर ले और हमारे मन-बुद्धि कुण्ठित रह जाएँ तो ?

यहाँ सावधानी रखनी है। श्रीमद आद्य शंकराचार्य ने कहा हैः "श्रद्धा का अर्थ यह नहीं कि किसी मजहब को, किसी मत को, किसी पंथ को मानकर किसी कोने में जीवन भर पड़े रहो, कोल्हू के बैल की तरह वर्तुल में घूमते रहो... इसका नाम श्रद्धा नहीं है।"

श्रद्धालु लोगों को कई बार ऐसा लगता है कि उनमें बहुत श्रद्धाभाव है। ऐसे श्रद्धालुओं को उनकी श्रद्धा का माप निकालने के लिए अवसर देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं- आपकी श्रद्धा कितनी है उसे जानना चाहो तो सोचो, साधन भजन में आपकी तत्परता कितनी है, मुक्तिलाभ के लिए आपमें तत्परता कितनी है। आप में जितनी तत्परता होगी उतना इन्द्रियसंयम होगा। जितना इन्द्रियसंयम होगा उतनी अन्तरात्मा बलवान होगी। सुख-दुःख में आप हिलेंगे नहीं। ऐसा अवसर आयेगा कि विश्व का बड़े-में-बड़ा ऐहिक लाभ भी आपको उल्लू नहीं बनायगा, बड़े-में-बड़ी हानि भी आपको परेशान नहीं करेगी।

उल्लू को जैसे सूर्य नहीं दिखता ऐसे ही जिसको अपनी असलियत नहीं दिखती वही आदमी छोटी-छोटी चीजों में सुखी-दुःखी होकर, परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने आपको नष्ट कर देता

है।

श्रद्धा तो हर जगह करनी ही पड़ती है। भक्तिमार्ग में भी श्रद्धा की आवश्यकता है और व्यवहार में भी श्रद्धा की आवश्यकता है। 'व्यापार में मुनाफा होगा' इस श्रद्धा के साथ ही व्यापार-धंधा किया जाता है। बद्रीनाथ जाते-जाते कई गाड़ियाँ गिर पड़ती हैं फिर भी लोग ड्राइवर पर विश्वास करके बस में बैठते हैं। अपने बाप के विषय में भी श्रद्धा करनी पड़ती है। माँ ने कह दिया और बेटे ने मान लिया। चाचा-मामा भी श्रद्धा से मान लिया। हम गुजराती हैं, मारवाड़ी हैं, सिन्धी हैं यह भी तो हमने सुन-सुनकर माना है।

यह सब व्यवहारिक श्रद्धा है। श्रीकृष्ण जिस श्रद्धा की बात कहते हैं वह श्रद्धा है अपने आत्मदेव को पाने की, जन्म-मृत्यु जरा व्याधि से सदा के लिए छूटने की, तमाम-तमाम मुसीबतों से सदा के लिए जान छुड़ाने की।

जो सदा परिवर्तनशील है उस संसार के प्रति हमारा आकर्षण है और जो सदा अचल है उसके प्रति हमारी श्रद्धा नहीं है। अचल तत्त्व को पाने के लिए हममें उत्साह नहीं है इसलिए हम अशान्त होते हैं। जो नश्वर चीजें हैं, चल वस्तुएँ हैं उनकी पाकर सुखी होने की हमारी नादानी बनी रही है। जो वास्तव में शांतस्वरूप है, सुखस्वरूप है, जिसको पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रहता, जिसमें स्थित होने के बाद मौत की भी मौत हो जाती है ऐसे परमात्मतत्त्व को पाने की अगर तत्परता आ जाय, अपने उस वास्तविक स्वरूप में टिकने की दृढ़ता आ जाय तो शांति तो हमारा स्वभाव है।

शांति आपका स्वभाव है, अमरता आपका स्वभाव है, आपको पता नहीं। मरने वाले शरीर और मिटनेवाली वस्तुओं से हम इतने विमोहित हो गये कि अपनी अमरता का ज्ञान हमने आज तक नहीं पाया।

अपने मुँह में बत्तीस दाँत हैं। हैं तो पत्थर लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ कि 'ये पत्थर क्यों मुँह में पड़े हैं ? उसे निकालकर फेंक दूँ।' ऐसा विचार कभी नहीं आता। रोटी-सब्जी खाते-खाते कुछ तिनका दाँत में फँस जाता है तो जीभ वहाँ बार-बार जाती है। जब तक उसको निकाल नहीं देती तब चैन नहीं लेती। मुँह में दाँत होना स्वाभाविक है। लेकिन दाँतों के बीच कुछ फँस जाना यह अस्वाभाविक है। अस्वाभाविकता को हटाना पड़ता है।

ऐसे ही सुखी और शांतिपूर्ण जीवन सब चाहते हैं। दुःख और अशांति कोई नहीं चाहता। सुख और शांति प्राणी का मूल स्वभाव है। दुःख और अशांति मन की बेवकूफी से.... इच्छा और वासना की बेवकूफी से आती है।

कोई नहीं चाहता कि मुझे दुःख मिले, अशांति मिले। शांति और सुख तुम्हारा स्वभाव है। यह आपकी स्वाभाविक माँग है। अशांति और दुःख आपकी माँग नहीं, फिर भी अशांति और दुःख पैदा करे ऐसे विकारों के साथ, ऐसी तुच्छ चीजों के साथ आप मिल जाते हैं। मिलने की इस आदत को तोड़ने के लिए साधन में तत्परता होनी चाहिए।

साध्य को पाय बिना साधक क्यों रह जाय ?

साध्य को पाय बिना अगर साधक रह जाता है तो परमात्मा में उसकी इतनी श्रद्धा नहीं है। कोई मत-पंथ-सम्प्रदाय बोले कि 'तुम मर जाओगे तब तुम्हें कन्धों पर उठाकर ले जाएँगे।' ....तो यह अन्धश्रद्धा है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि श्रद्धा के साथ तत्परता हो। अगर मरने के बाद कोई किसी को कन्धों पर उठाकर कहीं ले जाता हो तो भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भगवदगीता कही क्यों ? अर्जुन को

इतना ही कहते कि युद्ध कर ले... तू मर जायगा तो तुम्हें कन्धों पर उठाकर मुक्त कर दूँगा। वसिष्ठजी महाराज ने राम जी को आत्मज्ञान का उपदेश क्यों दिया ? राजा जनक को भी अष्टावक्र बोल देते कि तुम नामदान ले लो, मरने के बाद मैं कन्धों पर चढ़ाकर पहुँचा दूँगा।

नहीं...। श्रद्धा के साथ तत्परता चाहिए। ज्ञान के लिए साधन में तत्पर होगा तो इन्द्रियों में संयम आयेगा। असंयमी इन्द्रियाँ मन और देह को कमजोर कर देती है। छोटी–छोटी बातों का प्रभाव जिस आदमी के चित्त पर पड़ जाता है वह आदमी बहुत छोटा हो जाता है।

तुम किसी आदमी का भविष्य जानना चाहते हो तो देखो कि उससे बात करते–करते छोटी–छोटी बातों का प्रभाव उसके चित्त पर पड़ता है कि नहीं। छोटी–छोटी बातों का प्रभाव पड़ता है तो समझ लेना, उसका भविष्य छोटा है। जिस पर छोटी–छोटी बातों का प्रभाव नहीं पड़ता उसका हृदय विशाल होता चला जायगा। ज्यों–ज्यों छोटे–छोटे प्रसंगों का, छोटे–छोटे सुख–दुःखों का, मान–अपमान का प्रभाव चित्त पर कम पड़ेगा त्यों–त्यों उसकी साध्य के प्रति तत्परता सिद्ध होती जाएगी, उसका हृदय विशाल होता जाएगा, वह महान होता जाएगा और एक दिन वह महात्मा बन जाएगा।

अपने चित्त के ऊपर ही अपने व्यवहार का आधार है। कोई भी धर्मगुरू हो, कुलपति हो, समाज का अगुआ हो तो उसके घर की क्या परिस्थिति है यह मत देखो। उसके चित्त की जैसी स्थिति होगी ऐसी ही उसके घर में सुव्यवस्था या अव्यवस्था होगी।

हम किसी को कुछ कार्य करने का आदेश दें तब कहने के ढंग पर निर्भर करता है कि सामने वाले में कार्य करने के प्रति उत्साह की वृत्ति उठेगी, अर्ध उत्साह उठेगा या विपरीत विचार उठेगा। तुम्हारे चित्त में राग–द्वेष की ठोकरें जितनी कम लगेंगी, कार्य में जितनी तत्परता होगी, श्रद्धा होगी उतना ही तुम्हारा व्यवहार विशालतापूर्ण होगा, व्यापक भावनायुक्त होगा और जितनी व्यापक भावना होगी, चित्त एकाग्र होगा उतना ही सामने वाले पर प्रभाव पड़ेगा। वह आपके अनुकूल चलेगा।

जो दूसरों को ठग की नजरों से देखता है उसको ठग ही मिलते हैं। जो दूसरों को चोर की निगाहों से देखता है उसे चोर ही मिलते हैं। जो दूसरों को अपने प्यारे परब्रह्म परमात्मा की निगाहों से देखता है वह परमात्मामय बन जाता है। आपकी जैसी दृष्टि होती है ऐसा ही परिणाम आता है।

पाश्चात्य जगत में अभी श्रद्धा के विषय में कुछ अध्ययन चल रहा है। मानव के मन की मान्यता क्या–क्या परिणाम ला सकती है उस पर विज्ञानी लोग प्रयोग कर रहे हैं।

कुछ वर्ष पूर्व की एक घटित घटना है। किसी आदमी पर खून का केस चला। खून के दो मामलों में वह अपराधी सिद्ध हुआ और फाँसी की सजा घोषित हो गई। फिर उसने फैसला बदलवाने हेतु हाईकोर्ट में याचिका दायर की, सुप्रीम कोर्ट में गया लेकिन हारता चला गया। आखिर राष्ट्रपति को दया की अर्जी भेजी, वह भी ठुकरा दी गई। फाँसी की दिनाँक निश्चित की गई।

वैज्ञानिकों ने उसे समझायाः अपने पाप का फल भोगने के लिए अब तू फाँसी पर चढ़ेगा। अब बचने की कोई उम्मीद नहीं है तो मरते–मरते एक काम ऐसा करके जा जिससे तेरा शरीर मानव जात के काम आ जाय। फाँसी पर लटक मरो या हमारे प्रयोग में मरो, मरना तो है ही।"

वह अपराधी सहमत हो गया। वैज्ञानिकों ने कानूनी रीति से अनुमति प्राप्त कर ली। फाँसी के लिए जो दिन निश्चित किया गया था उस दिन डॉक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने अपने साधनों से सुसज्ज होकर प्रयोग करना शुरू किया। उन्होंने उस आदमी से कहाः "हम सर्प के दंश से तेरी मृत्यु करायेंगे। सर्प के डँसने के बाद शरीर में जहर कैसे आगे बढ़ता है, कितने समय में कैसे मृत्यु होगी, यह हम वैज्ञानिक साधनों से जाँचेंगे। विष का निवारण कैसे करना इसकी खोज हम इस प्रयोग से करेंगे। इस प्रकार तेरी मृत्यु फाँसी से नहीं अपितु सर्पदंश से होगी।"

निश्चित समय पर प्रयोगशाला में एक घोड़ा लाया गया। फिर एक भयंकर विषैला साँप लाया गया। उस आदमी के सामने घोड़े को साँप का दंश लगवाया गया। घोड़े पर जहर का प्रभाव पड़ा। वह छटपटाकर गिर पड़ा और कुछ ही देर में मर गया। उस मुजरिम ने यह सब देखा। विज्ञानियों ने कहाः

"इसी सर्प के द्वारा तुम्हारी आखिरी मंजिल तय करायेंगे।"

आँखों पर पट्टियाँ बाँध दी गईं। कन्धे तक काला कपड़ा ढाँक दिया गया। समय बताया जा रहा हैः पाँच मिनट बाकी हैं.... अब चार मिनट बाकी... अब तीन... ढाई... दो डेढ़... एक.... आधी....अब सर्पदंश लगाया जा रहा है..... एक... दो... तीन....।

सर्पदंश के बदले विज्ञानियों ने चूहे से कटवा दिया। उसे कहा गया कि उसी साँप ने तेरे को काटा। उस आदमी को पक्का विश्वास था कि साँप ने ही काटा है। उसके चित्त पर प्रभाव पड़ गया। शरीर का छटपटाना शुरू हो गया। जैसे घोड़ा छटपटाया था ऐसे ही वह आदमी भी छटपटाया। डॉक्टरों ने उसका खून चेक किया तो वे हैरान हो गये कि इसके खून जहर कैसे आ गया ? चूहे को जाँचा तो उसमें ऐसा जहन नहीं था। वह आदमी तो मर गया।

'मुझे साँप ने काटा.... साँप ने काटा.....' इस घबराहट से आदमी मर सकता है। भय के कारण हार्टफेल हो सकता है। कहीं छापे पड़े और आदमी का हार्टफेल हो जाय, ऐसे प्रसंग बनते हैं। मन का प्रभाव तन पर पड़ता है। विज्ञानी चकित हुए कि मन का प्रभाव तन पर तो लेकिन तन में विष कैसे बन गया ? उनको आखिर निष्कर्ष रूप में कहना पड़ा कि मन में ऐसी शक्ति होती है कि वह तन में जहर भी बना लेता है।

उनको यह पता नहीं था कि हजारों वर्ष पूर्व भारत के छोटे-छोटे योगी भी कहते थे कि तुम्हारे मन में अगर तीव्र श्रद्धा है तो अमृत से विष बन सकता है और विष से अमृत बन सकता है।

रात्रि के अन्धेरे में पेड़ के ठूँठे में चोर दिखते हो तो काँपने लगते हो। रस्सी में साँप की कल्पना कर लेते हो तो मारे डर के उछल पड़ते हो। आपके मन की जैसी अवस्था होती है वैसा प्रभाव आपके तन पर पड़ता है, आपका व्यवहार उस प्रकार का होता है।

मन आपका कल्पवृक्ष है। इसीलिए कहा जाता है कि कपड़ा बिगड़ जाय तो चिन्ता नहीं, पैसा बिगड़ जाये तो चिन्ता नहीं लेकिन अपना मन मत बिगाड़ना क्योंकि इसी के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

कभी छोटी-छोटी बातों में घबड़ाना नहीं। जो आदमी घबड़ा जाता है वह धोखा खाता है। जो आदमी कुपित होकर निर्णय लेता है उसे बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। शांतमना होकर, मानसिक सन्तुलन लाकर सब निर्णय करें।

मरख बादशाह को बहकाया गया कि हिन्दुओं को मुसलमान बनाओगे तो खुदाताला आपको बिस्त ले जाएँगे। उन नादानों को यह पता नहीं किः

शक्कर खिला शक्कर मिले, टक्कर खिला टक्कर मिले।
नेका का बदला नेक है, बदों को बदी देख ले॥
इसे तू दुनियाँ मत समझ मियाँ ! यह संसार की मझदार है।
औरों का बेड़ा पार कर, तो तेरा बेड़ा पार है॥

तलवार के बल से, राजसत्ता के जुल्म से दूसरों को धर्मभ्रष्ट करके उन्हें मुसलमान बनाने पर खुदाताला राजी होता हो, तो वह सच्चा खुदाताला हो भी नहीं सकता। जो खुद ही है रोम-रोम में, उसी को खुदा बोलते हैं। जो आप ही आप हैं.... ना कोई माई ना कोई बाप... आप ही आप..... वही जो खुद ही खुद बस रहा है उसे खुदा कहते हैं। जो रोम-रोम में बस रहा है उसे राम बोलते हैं। वह

एक का एक है, नाम अनेक है। जैसे गंगा एक और घाट अनेक, ऐसे ही ज्ञान स्वरूप परमात्मा एक और उसकी उपासना–आराधना के घाट अनेक हो सकते हैं। जरूरी थोड़े ही है कि सब एक ही घाट से गंगा–स्नान करें ? कोई कहीं से जाय, कोई कहीं से जाय। पहुँचना एक ही जल में है। लेकिन अंधश्रद्धा वाली मति को यह पता नहीं चलता। श्रद्धा के साथ तत्परता और इन्द्रियसंयम तो तभी आदमी ठीक निर्णय लेता है।

मरख बादशाह ने गलत निर्णय लिया। गलत निर्णय कोई भले ही ले ले लेकिन उस गलत निर्णय के शिकार आप बनो न बनो यह आपके हाथ की बात है। कोई गलत निर्णय लेता है और आप पर जुल्म करता है, तो उसके जुल्म के शिकार बनो या न बनो, आप स्वतन्त्र हो। कोई आप पर कुपित होता है, आप पर कोप का विष फेंकता है, उस विष को पियो न पियो, उसे उड़ेल दो, आपकी मर्जी। वह तो कुपित होता है लेकिन आप उस समय सोचोः वह कोप कर रहा है इस शरीर को देखकर, हाड़–मांस के शरीर पर नाराज हो रहा है। मुझ चैतन्य आत्मा का क्या बिगड़ेगा ? हरि ॐ तत्सत्.... कोप सब गपशप....।

अपने चित्त की जो रक्षा नहीं करता है वह चाहे कितने ही मंदिरों में जाए, कितनी ही मस्जिदों में जाय, कितने ही गिरजाघरों में जाय लेकिन अपने दिल के घर में जाने का द्वार बन्द कर देता है तो मन्दिर–मस्जिद में भी भगवान नहीं मिलते।

जिसने अपने चित्त की ठीक से रक्षा की है वह मंदिर में जाता है तो उसे वहाँ भगवान मिलते हैं। वास्तव में कण कण मे भगवान हैं तो मूर्ति में उसे भगवान के दीदार क्यों नहीं होंगे ? जो आदमी अपने स्नेहियों, कुटुम्बियों में, समाज में परमात्मा को निहार नहीं सकता है वह मरने के बाद किसी लोक में जाकर भगवान को देखे यह बात गले नहीं उतरती।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होई मैं जाना।।

परमात्मा तो सर्वत्र है। हमारी वृत्ति जितनी तदाकार होती है, प्रेम उभरता है उतना ही वह परमात्म रस से भरती है.... देर सबेर हमारा आवरण भंग होता है, परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

डेठो मुख शहनशाह जो हींयरे थ्योम करार।
लत्था रोग शरीर जा मुझे सत्गुरू जे दीदार।।
सत्गुरूअ शा तारीया श्रद्धावारा लख्ख।
बांभण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ऊँचा नीचा मानखा।
मुं जेड़ा मूर्ख केई तार्या केतरा।।

सदगुरू जब निगाह देते हैं तब ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र हो, सब तर जाते हैं। भक्त जब सदगुरू की निगाह में अपनी निगाह मिला देते हैं, सदगुरू की तत्परता और श्रद्धा में अपनी तत्परता और श्रद्धा मिला देते हैं तब परमात्मा का दीदार हो जाता है। दूज का चाँद देखने के लिए दिखाने वाले की दृष्टि के साथ अपनी दृष्टि सूक्ष्म करनी पड़ती है। ऐसे ही परमात्मा पहले था, अब भी है, बाद में भी रहेगा। उसे देखने की तत्परता होती है, अपनी दृष्टि सूक्ष्म होती है तब दीदार हो जाता है। दूज का चाँद तो फिर गायब हो जायगा, अमावस्या को बिल्कुल नहीं दिखेगा लेकिन परमात्मारूपी चाँद एक बार फिर दिख गया तो फिर कभी अदृश्य नहीं होगा। वह सदा एकरस रहता है, शाश्वत रहता है।

मरख ने जब जुल्म किया तब जो कायर लोग थे वे जुल्म के शिकार हो गये और अपना धर्म छोड़ दिया। वे मुसलमान हो गये।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावह।

अपने धर्म में रहकर मर जाना अच्छा है लेकिन दूसरे का धर्म भयजनक है, मुक्तिमार्ग से भटका देता है। अपने धर्म में, अपने कर्त्तव्य में जो आदमी टिका रहता है उसको पहले थोड़ा कष्ट सहना पड़े लेकिन धर्म में टिकने का बल भी आता है। टिकने में सफल होता है तो भी सुखी रहता है और कभी कठिनाई सहकर चला भी जाता है तो अपने धर्म पालने का भाव उसको वीरगति प्राप्त करा देता है।

यहाँ एक सन्देह कोई कर सकता हैः मरख बादशाह ने अपना धर्म तो पाला !

नहीं..... उसने अपना धर्म नहीं पाला। उसका राजधर्म क्या था ? राजा के लिए प्रजा बालक समान है। एक बालक की बातों में आ जाओ और दूसरे बालकों को मारो काटो....। यह माई बाप का कर्त्तव्य नहीं है। राजा तो प्रजा के तमाम वर्गों की उन्नति चाहे, हर पहलुओं पर ध्यान दे। लेकिन जो राजा किसी की चाबी से अपनी खोपड़ी भर ले और तलवार के बल से जुल्म करके खुदा के वहाँ खुश होना चाहे तो धर्मभ्रष्ट कहा जाएगा।

उस धर्मभ्रष्ट, महत्त्वाकाक्षी, रावण जैसे मरख ने अपना अंधा दमन चलाया और कई हिन्दुओं की, सिन्धियों को धर्म परिवर्तन के लिए लाचार किया। समझदार और हिम्मतवान लोगों ने मरख को कहा कि, "हमें सोचने के लिए थोड़ा समय दो। हम थोड़ी अर्चना-उपासना-पूजा करेंगे, भगवान हमारी सुनेगा और आपका भी कुछ मार्गदर्शन होगा।"

मरख ने कहाः "अगर तुम्हारा भगवान का ईश्वर नहीं आया तो धर्म बदलोगे ?"

"हाँ, अगर नहीं आया तो बदलेंगे।"

उनको पूरा विश्वास था, आत्मश्रद्धा थी कि रोम-रोम में रमने वाला राम जरूर कुछ मार्ग दिखाएगा।

विश्व की कोई हस्ती आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकती, जब तब आपने अपने में से श्रद्धा नहीं बिगाड़ी। हजार हजार मुसीबतों के बीच भी यदि अपने आप पर पूर्ण श्रद्धा है, आत्म-विश्वास है तो आखिरी क्षण में भी आपकी विजय हो सकती है। जैसे द्रौपदी जी की आखिरी क्षणों की प्रार्थना से भगवान वस्त्ररूप में प्रकट हो गये। वह पागल दुःशासन साड़ियाँ खींचता चला गया लेकिन सफल नहीं हुआ अपने दुष्ट इरादे में। द्रौपदी ने पूर्ण श्रद्धा और तत्परता से भगवान को पुकारा और भगवान ने पुकार सुन ली।

आपको अगर श्रद्धा है, तत्परता है तो सामने वाला आपको तंग नहीं कर सकता। आप जितने भयभीत होंगे उतनी परेशानी आपको आ मिलेगी। उस कैदी को वास्तव में साँप ने नहीं काटा था लेकिन उसने विश्वास कर लिया कि साँप ने ही काटा है और डर गया तो उसकी मृत्यु हो गई।

थोड़ी बहुत बीमारी आ जाती है और आप नर्वस (हताश) हो जाते हो, कराहने लगते हो कि 'मैं बीमार हूँ..... मैं बीमार हूँ....' बीमारी में आपकी श्रद्धा हो जाती है तो बीमारी बढ़ती है। निरोगता में श्रद्धा होती है तो निरोगता बढ़ती है। मस्ती में श्रद्धा होती है तो मस्ती बढ़ती है। झगड़े में श्रद्धा होती है तो झगड़े बढ़ते हैं। महिला मंदिर में जाती है, आश्रम में जाती है सत्संग सुनने और भीतर से डरती रहती है कि मेरा आदमी डाँटेगा....झगड़ा करेगा..... तो जरूर डाँटेगा। आपने पहले से ही उसको डाँटने के लिए प्रेरणा कर दी अपने भीतर से।

आपका मन कल्पवृक्ष है। ऐसी श्रद्धा बनाये रखो कि जीवन की शाम होने से पहले जीवनदाता को पा लूँगा। मरने के बाद किसी लोक में, किसी स्वर्ग में, किसी सचखण्ड में जीवनदाता का पाना नहीं है। जीवनदाता तो अभ है, यहीं है। उसी की सत्ता से तो तुम्हारे दिल की धड़कनें चलती

हैं भाई ! उसी की सत्ता से आँखें देखती हैं। उसी की सत्ता से कान सुनते हैं। उसी की सत्ता से मन संकल्प–विकल्प करता है। उसी की सत्ता से बुद्धि निर्णय करती है। वह एकरस है।

आद सत जुगाद सत है भी सत।
नानक ! होसी भी सत॥

आदमी जब तक अपनी ओर नहीं आता है, आत्मसुख की ओर नहीं आता है तब तक उसको कितना भी सुख, कितनी भी सुविधाएँ मिले, अन्त में बेचारा भोग भोगते–भोगते लाचार हो जाता है।

भोगा न भुक्तवा वयमेव भुक्ताः।

भोगों को आदमी क्या भोगेगा, वह स्वयं ही बीमारियों का, लाचारियों का भोग हो जाता है। भोजन करना तो ठीक है लेकिन मजे के लिए भोजन करेगा तो दो ग्रास ज्यादा ठूँस देगा। देखना ठीक है लेकिन देखने में अगर विकार आता है, बार–बार देखकर मन में कुछ पाप आता है तो अपना नाश होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सावधान रहे, तत्पर रहे, संयमी रहे। लक्ष्य याद रखे कि मुझे ईश्वर को पाना है और उसमें श्रद्धा रखे। इससे अवश्यमेव कल्याण होता है।

अपने ईश्वरीय स्वभाव में श्रद्धा करो। दुःख के समय, मान के समय, अपमान के समय सावधान रहो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सनातन सत्य की विभावना

लोग पूछते हैं कि सबसे बड़ा धर्म कौन सा है ? सबसे श्रेष्ठ धर्म कौन सा है ? सब मजहब अपनी अपनी डींग हाँकते हैं। सब हाँकते हैं कि हमारे मजहब में आ जाओ, हमारे पंथ में, हमारे मत में आ जाओ। बस यही सच्चा है। .....तो सबसे बड़ा और सच्चा धर्म आपके मत में कौन-सा है ?

भाई ! हमारे मत में तो सत्य किसी मत के आधीन नहीं होता है। मेरे मत में जो सत्य है वही वास्तविक सत्य है ऐसा हो भी नहीं सकता। सत्य किसी मत के आधीन है तो वह सत्य है भी नहीं।

मत मति के होते हैं। सारी मतियाँ जहाँ से प्रकाश पाती हैं वह परमात्मा वास्तविक में सत्य है। जैसे, सागर से पानी वाष्पीभूत होकर आकाश में जाता है, बादल बनकर बरसता है, झरने होकर, छोटी बड़ी नदियाँ होकर बहता है, सरोवर होकर लहराता है। भूमि में उतरकर कूप में जाता है। पृथ्वी पर जो भी जलस्थान हैं वे सब सागर के ही प्रसाद हैं।

सागर का एक मेढक दैवयोग से किसी कुएँ में पहुँचा। कुएँ का मेढक, कूपमण्डूक से पूछता है:

"तुम कहाँ से आये हो ?"

"मैं विशाल सागर से आया हूँ।"

"सागर कितना बड़ा है ?"

"बहुत बड़ा.... बहुत बड़ा....।"

"कितना बड़ा ?"

"बहुत बड़ा।"

कुएँ के मेढक ने छलाँग मारी... पूछाः

"इतना बड़ा ?"

"नहीं.... इससे तो बहुत बड़ा।"

कूपमण्डूक ने दूसरी बड़ी छलाँग, फिर तीसरी.... चौथी... पाँचवीं छलाँग लगाते हुए पूछा। सागर का मेंढक बोलता है:

"नहीं, नहीं भाई ! सागर तो इससे कई गुना बड़ा है। कूप और सागर की तुलना ही नहीं हो सकती।"

आखिर कूपमण्डूक ने साँस फुलाकर अपनी पूरी ताकत से लम्बे में लम्बी छलाँग लगाई, एक छोर से दूसरे छोर तक। अहंकार में आकर कहने लगाः

"इससे बड़ा तो तुम्हारा सागर हो भी नहीं सकता है।"

तब सागर का मेढक बोलता है: "भाई ! तुम्हारे सारे कुएँ उस सागर के प्रसादमात्र हैं।"

इसी प्रकार तुम्हारे सारे मत, पंथ, मजहबरूपी कूप, जिनमें तुम छलाँगे मार-मारकर बड़प्पन की डींग हाँक रहे हो, वे सारे के सारे मजहब, मत, पंथ उस सच्चिदानंदघन परमात्मा के ही प्रसाद हैं। सब चिदघन चैतन्य का ही विवर्त है। जब सृष्टि नहीं बनी थी तब भी जो था, सृष्टि है और मत, मजहब कई आये और कई गये, कई बने, कई बदले, कई बिगड़े फिर भी जो सदा एकरस है वह सच्चिदानंद परमात्मा सबसे महान है, सबसे श्रेष्ठ है, सनातन सत्य है।

हमारी तुम्हारी कई मतियाँ आयीं, विचार-विमर्श, व्याख्या, शास्त्रार्थ हुए। कभी गलत मार्ग में जाकर जन्म-मरण की भीषण यातनाएँ सहीं। कई सुज्ञजनों ने अपनी मति उस मालिक को अर्पित

करके मालिक के साथ एकरसता का अनुभव किया। वह एकरस परमात्मा वैसे का वैसा है। वही सबका मूल आधार है, अधिष्ठान है।

नादान लोग तर्क करते हैं किः 'सर्वत्र भगवान हैं, सबमें भगवान हैं, सब कुछ जो है वह सब भगवान ही हैं तो हम कुछ भी करें..... पापाचार करें, जो चाहे सो खा लें, भोग लें तो क्या फर्क पड़ता है ? जीवो जीवस्य जीवनम् है। छोटे जीव बड़े जीवों के काम आते हैं तो हम मांसाहार कर लें तो क्या घाटा है ? जब सर्वत्र भगवान हैं तो नरक में भी भगवान हैं। पाप में भी भगवान हैं और पुण्य में भी भगवान हैं। सब भगवान ही भगवान हैं तो मनमाना क्यों न खाएँ ? धर्म की, नीति की, शास्त्रों की, गुरू की, माता-पिता की जंजीरों में क्यों जकड़े रहें ?

अरे भाई ! सर्वत्र भगवान हैं फिर भी आप चाहते तो सुख हो, चाहते तो आनन्द हो। सर्वत्र भगवान है ऐसा सोचकर आप शांत तो नहीं हो गये। सुख के लिए आप चेष्टा तो करते ही हो। शास्त्र के अनुकूल, माता-पिता और सदगुरू के अनुकूल चेष्टा करने से भगवान का सुखस्वरूप अनुभव में आयेगा। मनमाना करोगे तो फिर उसका फल भी वैसा ही प्रकट होगा। नरक में भी भगवान हैं ऐसा सोचकर नरक में ले जाने वाले कृत्य करोगे तो भगवान तुम्हारे लिए नरकरूप में प्रकट होंगे, बीमारी के रूप में प्रकट होंगे, अशांति के रूप में प्रकट होंगे। भगवान को नरक के रूप में, बीमारी के रूप में, अशांति के रूप में, दुःख के रूप में देखना चाहते हो तो मनमाना करो। अगर भगवान को सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रेमस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, मुक्तिस्वरूप देखना चाहते हो तो शास्त्र और गुरूओं के आदेश के अनुकूल कर्म करो, अन्यथा मर्जी आपकी है। भगवान कैदी के रूप में जेल में जाएँगे और जेलर के रूप में डण्डा भी मारेंगे। दुराचार करोगे तो भगवान डण्डा मारने वाले के रूप में आयेंगे। 'गुरूजी ! यह स्वीकार करो.... साधक भैया ! यह खाओ....' ऐसा कहते हुए भगवान आयेंगे। भगवान फल-फूल लाइन में खड़े रहेंगेः 'गुरूदेव की जय हो....।' शास्त्र और गुरूदेव की आज्ञा के अनुकूल चलोगे तो भगवान आपकी जय-जयकार करेंगे। अगर पापाचार करोगे तो वही भगवान डण्डा लेकर आयेंगेः चल ४२० में... खून किया है तो चल ३०२ में।

अब क्या करना, क्या नहीं करना, कैसे जीना.... मर्जी आपकी है। भगवान सब कुछ बने बैठे हैं।

भगवान की लीला अनूठी है। वे सब हैं, सब जगह हैं। जैसे रात्रि के स्वप्न में तुम एक ही चेतन होते हो किन्तु वहाँ जड़ चीजें भी बन जाती हैं, चेतन जीव भी बन जाते हैं, सज्जन भी बन जाते हैं, दुर्जन भी बन जाते हैं। नियम बनाने वाले भी बन जाते हैं नियम का भंग करने वाले भी बन जाते हैं। नियम-भंग करने वाले सजा के पात्र बन जाते हैं, सजा देने वाले भी बन जाते हैं। स्वप्न में यह सब आपके एक ही चैतन्य के प्रसाद से बनता है।

एक अन्तःकरण में चैतन्य का ऐसा चमत्कार हो सकता है तो व्यापक चैतन्य ईश्वर इस सृष्टि का चमत्कार कर दे इसमें क्या सन्देह है ?

हमारे चित्त में एकदेशीयता नहीं होना चाहिए, मत-मजहब की गुलामी नहीं होनी चाहिए। मत मति से बनते हैं। मजहब पीर-पैगम्बरों ने बनाये हैं। पीर-पैगम्बरों को और मत-मतांतर बनाने वालों को जिस परमात्मा ने बनाया है उस परमात्मा की हम उपासना करेंगे।

जो हमारे बाप का बाप है, दादाओं का दादा है, हमारे पूर्वजों का भी जो पूर्वज है, जिसमें से हमारे सब पूर्वज आये और लीन हो गये, प्राणिमात्र को सत्ता, स्फूर्ति, चेतना देने में जो संकोच नहीं करता उस निःसंकोच नारायण का हम ध्यान करते हैं।

नारायण..... नारायण..... नारायण.... नारायण.....।

हमारा नारायण, हमारा भगवान, हमारा खुदा एकदेशीय नहीं है, हमारा भगवान कोई एककालीय नहीं है, हमारा परमात्मा एक ही आकृति में बँधा हुआ नहीं है।

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्व विष्णुमयं जगत्॥

हमारा भगवान वह है। तुम्हारा और पूरे विश्व का वास्तविक में तो वही भगवान है। मानो न मानो, तुम्हारी मर्जी। मानोगे तो उसकी मोहब्बत का सुख पाओगे। नहीं तो.....

ॐ.....ॐ.....ॐ.......ॐ.....

ॐकार की जिसकी स्वाभाविक ध्वनि है वह चेतन हमारा आत्मा है।

किसी भी जाति का, मत का, मजहब का बच्चा पैदा होता है तो 'ऊँवाँ.... ऊँवाँ...ऊँवाँ....' करके उसी चेतना की खबर देता है। किसी भी जाति का, मत का, मजहब का आदमी बीमार पड़ता है तो चद्दर तानकर शांति पाने का ढंग सभी का एक जैसा होता है। 'ऊँ.... ऊँ..... ऊँ...' कराहते हुए अनजाने में ही उस चेतना में आराम खोजते हैं जिसकी स्वाभाविक ध्वनि ॐकार है। शास्त्र कहते हैं– **तस्य वाचक प्रणवः।**

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

'जो पुरूष ॐ इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह पुरूष परम गति को प्राप्त होता है।'

(भगवद् गीताः ८.१३)

भगवान अपने को सर्वव्यापक चिदघन चैतन्य मानते हैं। 'केवल अर्जुन के रथ पर मैं हूँ' ऐसा नहीं मानते। अगर ऐसा मानते तो अर्जुन को कहते ही नहीं कि सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज.... सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण आ जा। अर्जुन श्रीकृष्ण की शरण में तो था। तभी तो उसके रथ की बागडोर भगवान ने हाथ में ली थी।

नहीं.... नहीं....। अर्जुन श्रीकृष्ण की शरण में था, श्रीकृष्ण–तत्त्व की शरण में नहीं था। इसलिए भगवान कहते हैं– अब श्रीकृष्ण–तत्त्व की शरण में आ जा। भगवान के माम का अर्थ है श्रीकृष्ण तत्त्व। धर्म की स्थापना करने वाले श्रीकृष्ण–तत्त्व की शरण में आ जा।

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थामधर्स्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

'हे भारत ! जब–जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब–तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरूषों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिए मैं युग–युग में प्रकट हुआ करता हूँ।'

(भगवद् गीताः ४.७.८)

भगवान युग–युग में आ जाते हैं तो क्या फिर चले भी जाते हैं ?

नहीं....। तुम मनुष्य हो। तुम जब राह भूलते हो तब वही चैतन्य मनुष्य का रूप लेकर तुम्हारा मार्गदर्शन करता है। वह समझाता है कि हे नर ! तू भी नारायण का स्वरूप है।

ऐसा कोई मजहब नहीं है विश्व में कि जिस मजहब के भगवान ने, खुदा ने, ईश्वर ने जीव को इतनी स्वतंत्रता दी हो, जीव की इतनी दिव्यता विकसित की हो। सनातन धर्म के भगवान अपने प्यारे के सारथि बनते हैं, उससे नीचे बैठते हैं। जीव को रथि बनाते हैं। जीव की आज्ञा में चलते हैं। अर्जुन महाभारत के युद्ध के प्रारंभ में भगवान से कहता हैः

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।

'हे अच्युत ! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए।'

गीता का नारायण नर के आधीन चलकर भी दिखाता है कि तू और मैं तत्त्व से एक हैं। जैसे पिता बेटे के आधीन होकर उसका विकास करके सयाना बना देता है ऐसे ही सनातन धर्म का ईश्वर साकार अवतरित होकर नरों को अपने नारायणस्वरूप में जगाने के लिए लीला करता है। शबरी भीलने के जूठे बेर खाये हैं तो सनातन धर्म के भगवान ने खाये हैं। दूसरे किसी मजहब के भगवान ने यह हिम्मत नहीं दिखाई है।

दूसरे भगवान दुर्जनों से मारे गये लेकिन सनातन धर्म के भगवानों ने दुर्जनों को स्वधाम अपने चरणों में पहुँचा दिया। ये भगवान दुर्जनों से हारे नहीं।

फिर भी जो आदमी जिसको भी मानता हो, अपने जीवन में उदारता, विशालता, सच्चाई, सहानूभूति, मानवता लाना चाहिए। जिस भगवान को भी मानो, कम-से-कम मनुष्य-मनुष्य के प्रति वफादार तो रहो। होना तो जीव मात्र के प्रति वफादार चाहिए। सबके लिए भलाई का भाव होना चाहिए। प्राणिमात्र के प्रति सदभाव होना चाहिए।

भाव मन तक है। भाव आया और गया। उसको जो देखता है, उसको भी जानने की जो कोशिश करता है वह अनन्त से मिल जाता है।

अनन्त परमात्मा का वर्णन हम क्या कर सकते है। 'भगवान दयालु हैं... भगवान न्यायकारी हैं... भगवान सर्वव्यापक हैं.... भगवान ऐसे हैं.... भगवान वैसे हैं.... 'यह तो ऋषियों का प्रसाद लेकर भगवान के गुणवान दुहराकर अपना चित्त पावन करते हैं। भगवान उदार हैं इसलिए उसे जैसा पुकारते हैं वैसा स्वीकार कर लेते हैं। बच्चा अपनी कैसी भी तोतली भाषा में माँ की पुकारता है तो माँ स्वीकार कर लेती है।

अपने प्यारे भगवान को अपने से दूर मानना, किसी अन्य देश में, किसी अन्य काल में मानना यह मूर्खता है। जैसे ५० साल का बूढ़ा बालमंदिर की पढ़ाई करने की बेवकूफी करे, ऐसे ही मानव तन पाकर बीस-पच्चीस साल की उम्र में भी भगवान को कहीं के कहीं माने, सुख के लिए विकारों की आग में अपने को तपाता रहे यह मूर्खता है। ऐसे लोगों के लिए तुलसीदासजी कहते हैं-

सो परत दुःख पावहिं।
सिर धुनि धुनि पछतावहिं॥
कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं।
मिथ्या दोष लगावहिं॥

'क्या करें ? जमाना खराब है... जमाना ऐसा है.. जमाना वैसा है... जमाना बदल गया....'

जमाना तो बदल गया लेकिन बदले हुए जमाने को अबदल आत्मा देखता है। उस आत्मा में आजा मेरे भैया !

हिमालय के जंगलों से गंगा बहती है। जंगल के बाँसों की आपस में रगड़ होने से या किसी कारण से जंगल में आग लगती है तो जंगल के हाथी भागकर गंगा में आ जाते हैं। उनका कुछ नहीं बिगड़ता।

ऐसे ही तुम्हारे चित्त में जब अशांति की आग लगे तब तुम ज्ञान की गंगा में आ जाओ। नारायण के ध्यान में डूब जाओ। चिदघन चैतन्य के स्वरूप में विश्रान्ति पा लो। सब समस्याएँ हल हो जाएँगी।

नारायण.... नारायण... नारायण.... नारायण.... नारायण....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वेदान्तका सत्संग–प्रसाद

जिन्हीं हरि कथा सुनी नहीं काना।
श्रवण रंध्र अहि भवन समाना।।
जे न करहिं रामगुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना।।

जिनके कानों ने हरिकथा नहीं सुनी है वे कान नहीं हैं, साँप के बिल हैं।

जिनके जीवन में आत्मज्ञान की कथा नहीं है उनका जीवन सचमुच दयाजनक है। जिनकी जिह्वा पर भगवान का नामोच्चारण नहीं है उनकी जिह्वा मेंढक की जिह्वा जैसी है।

भगवन्नाम का गुणगान करने से जिह्वा पवित्र होती है। भगवत्तत्त्व की कथा सुनने से कान पवित्र होते हैं।

वेदान्त का सत्संग एक ऐसा अनूठा बल देता है कि निर्धन को धनवानों का भी धनवान, सत्तावानों का भी सत्तावान, महान् सम्राट बना देता है। वह चाहे झोपड़ी में गुजारा करता हो, खाने को दोर टाइम भोजन भी न मिलता हो लेकिन जीवन में सदाचार के साथ वेदान्त आ जाय तो आदमी निहाल हो जाता है। वेदान्त अज्ञान को मिटाकर जीव को अपने आत्मपद में प्रतिष्ठित कर देता है। सत्संग जीवात्मा के पाप–ताप मिटाकर उसे शुद्ध बना देता है। कथा सुनने से पाप नाश होते हैं। कथा सुनने से अज्ञान क्षीण होता है। हरिकथा सुनने से, उसके प्रसाद से मन पावन होता है। जिनक जीवन में भीतर का प्रसाद नहीं, उनका जीवन दयाजनक है।

गाधि नाम का एक तपस्वी ब्राह्मण था। अपना गाँव छोड़कर एकान्त स्थान में जाकर धारणा–ध्यान करने लगा। भगवान विष्णु की उपासना करता रहा। उसकी धारणा सिद्ध हुई और भगवान नारायण ने उसको दर्शन दिया। गाधि ने कहाः

"हे भगवन् ! मैं आपकी माया देखना चाहता हूँ।"

भगवान ने कहाः "माया तो धोखा देती है। 'माया' का मतलब है 'या मा सा माया।' जो है नहीं फिर भी दिखती है। ऐसी माया के झंझट में पड़ना ठीक नहीं है। यह क्या माँग लिया तुमने ?"

"महाराज ! आपकी माया को एक बार देखने की इच्छा है।"

आखिर भगवान ने कहाः "हे गाधि ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम मेरी माया को देखोगे और छोड़ भी दोगे। उसमें उलझोगे नहीं।"

वरदान देकर भगवान नारायण अन्तर्धान हो गये।

गाधि ब्राह्मण प्रतिदिन दो बार तालाब में स्नान करने जाता था। एक बार उसने तालाब के जल में गोता मारा तो क्या देखता है ? 'मेरी मृत्यु हो गई है। कुटुम्बी लोग अर्थी में बाँधकर स्मशान में ले गये। शरीर जलाकर भस्म कर दिया।'

फिर वह देखता है कि एक चाण्डाली के गर्भ में प्रवेश हुआ। समय पाकर चाण्डाल बालक होकर उत्पन्न हुआ। कटजल उसका नाम रखा गया। छोटे–छोटे चाण्डाल मित्रों के साथ खेलता–कूदता कटजल बड़ा हुआ। गिलोल से पक्षी मारने लगा। कुल के अनुसार सब नीच कर्म करने लगा। युवा होने पर चाण्डाली लड़की के साथ विवाह हुआ। फिर बेटे–बेटियाँ हुई। चाण्डाल परिवार बढ़ा। कई निर्दोष पशु–पक्षियों को मारकर अपना गुजारा करता था। चालीस वर्ष बीत गये चाण्डाल बहुएँ घर में आयी, चाण्डाल दामाद मिले। बेटे–बेटियों का परिवार भी बड़ा होता चला।

तालाब के जल में एक ही गोता लगाया हुआ है और गाधि ब्राह्मण यह सब चाण्डाल जीवन की लीला महसूस कर रहा है।

वह चाण्डाल कटजल एक दिन घूमता-घामता क्रान्त देश में जा पहुँचा जहाँ का राजा स्वर्गवासी हो गया था। नया राजा चुनने के लिए हाथी को सिंगारा गया था। उसकी सूँड में जल का कलश रख दिया गया था। हाथी जिस पर जल का कलश उड़ेल दे, उसको नगर का राजा घोषित किया जायगा। हाथी ने कटजल पर कलश उड़ेला और सूँड से उठाकर अपने ऊपर बिठा दिया। बाजे, शहनाइयाँ, ढोल, नगाड़े बजने लगे। कटजल का राज्याभिषेक हुआ। वह चाण्डाल क्रान्त देश का राजा बन गया। उसने अपने चाण्डाल के सब निशान मिटा दिये। अपना नाम भी बदल दिया। आठ वर्ष तक उसने राज्य किया। दास-दासियों सहित रानियों से सेवित और मंत्री आदि से सम्मानित होता रहा।

वह पूर्वकाल में चालीस वर्ष तक जिस गाँव में रहा था उस गाँव के चाण्डाल संयोगवश इस नगर में आये और उसे देख लिया। उन्होंने उसे पुराने नाम से पुकारा। राजा बना हुआ यह चाण्डाल कटजल घबराया। उन लोगों का तिरस्कार करके सबको भगा दिया।

महल में दास-दासियाँ जान गईं कि यह मूँआ चाण्डाल है। धीरे-धीरे सारे नगर में बात फैल गई। सबका मन उद्विग्न हो गया।

नगर के पवित्र ब्राह्मण चिता जलाकर अपने शरीर को भस्म करके प्रायश्चित करने लगे। कई लोग तीर्थाटन करने चले गये। रानियाँ, दासियाँ, टहलुए, मंत्री सब उदास रहने लगे। अब राजा की आज्ञा कोई माने नहीं।

कटजल ने सोचा कि मेरे कारण इतने लोगों ने आत्महत्या कर ली। राज्य में विरोध फैल गया है। कोई आज्ञा मानता नहीं है। लोग राजगद्दी छीन लें उसके पहले मैं ही क्यों न अपने आप अपना अन्त कर दूँ !

उसने आग जलाई और अपने आपको उसमें फेंका। शरीर को आग की ज्वाला लगी, तपन से पीड़ित हुआ तो वह तालाब के पानी से बाहर निकल आया। देखा कि 'अरे ! यह तो कुछ नहीं है ! अभी तो एक गोता ही लगाया था तालाब के पानी में और इतनी देर में मेरी मृत्यु हुई, जीव चाण्डाली के गर्भ में गया, जन्म लिया, बड़ा हुआ, चाण्डाली के साथ शादी की, बच्चे हुए, आठ साल क्रान्त देश में राजा बनकर राज किया। मैंने यह सब क्या देखा ? चलो, जो होगा सो होगा। सब मेरी कल्पना है, सपना है, मरने दो।

ऐसा सोचकर वह अपने आश्रम में गया। दैवयोग से एक बूढ़ा तपस्वी साधू गाधि के आश्रम में आया। गाधि ने उसकी आवभगत की। रात्रि को भोजनोपरान्त वार्त्तालाप करते हुए बैठे थे तो गाधि ने पूछाः

"हे तपस्वी ! तुम इतने कृश क्यों हो ?"

अतिथि ने कहाः 'क्या बताऊँ......? क्रान्त देश में एक चाण्डाल राजा राज्य करता था। हाथी ने उसका वरण किया था। आठ साल तक उसने राज्य किया। मैं भी उसी नगर में रहा था। बाद में पता चला कि राजा चाण्डाल है। मैंने सोचा, पापी राजा के राज्य में कई चातुर्मास किये, पापी का अन्न खाया। मेरा जप-तप क्षीण हो गया। इसलिए मैं काशी गया। वहाँ चान्द्रायण व्रत रखे।"

चान्द्रायण व्रत में मौन रखा जाता है, जप तप किये जाते हैं। एकम के दिन एक ग्रास भोजन, दूज के दिन दो ग्रास भोजन, तीज के दिन तीन ग्रास भोजन.... इस प्रकार पूनम के दिन पन्द्रह ग्रास। फिर कृष्ण पक्ष की एकम के दिन से पन्द्रह ग्रास भोजन में से एक एक ग्रास घटाया जाता है और अमावस्या के दिन बिल्कुल निराहार। चन्द्र की कला के साथ भोजन घटता बढ़ता है अतः यह

चान्द्रायण व्रत कहा जाता है। इससे आदमी के पाप–ताप दूर होते हैं।

वह अतिथि कहता हैः "मैंने कई चान्द्रायण व्रत किये हैं इसलिए मेरा शरीर कृश हो गया है।"

गाधि दंग रह गया कि यह तपस्वी जिस राजा के बारे में कहता है वह तो मैंने तालाब के जल में गोता लगाते समय अपने विषय में देखा है। वह एक स्वप्न था और यह तपस्वी सचमुच काशी में चान्द्रायण व्रत करने गया ? इस बात को ठीक से देखना चाहिए।

गाधि ब्राह्मण पूछता–पूछता उस गाँव में पहुँचा। वहाँ के बूढ़े चाण्डालों से पूछाः "यहाँ कोई कटजल नाम का चाण्डाल रहता था ?" ....तो चाण्डालों ने बतायाः "हाँ, एक चाण्डाली का बेटा वह कटजल यहाँ रहता था। फिर पासवाले क्रान्त देश में वह राजा हो गया था। बाद में वह आत्महत्या करके, आग में जलकर मर गया। यहाँ उसके बेटे–बेटियों का लम्बा चौड़ा परिवार भी मौजूद है।"

गाधि ने अलग–अलग कई लोगों से पूछा। सभी ने उसी बात का समर्थन किया। अनेक लोगों से वही की वही बात सुनी। उस क्रान्त देश के लोगों से भी उसी चाण्डाल राजा की घटना सुनने को मिली।

गाधि आश्चर्य विमूढ़ हो गयाः "मैंने तो यह सब गोता लगाया उतनी देर में ही देखा। यहाँ सचमुच में कैसे घटना घटी ? यह सब कैसे हुआ ? यह सच्चा कि वह सच्चा ?"

गाधि ने सोचा कि अब विश्रान्ति पाना चाहिए। वह एकान्त गुफा में चला गया। डेढ़ साल तक भगवान नारायण की आराधना–उपासना की। भगवान प्रकट हुए। गाधि ब्राह्मण से वे बोलेः

"देख गाधि ! तूने कहा था कि मेरी माया देखना है। अब देख ली न ? यह सब मेरी माया का प्रभाव है। थोड़े समय में ज्यादा काल दिखा देती है वह होता कुछ नहीं लेकिन सच्चा भासता है। जल में गोता मारा तो चाण्डाल का जीवन सच्चा लग रहा था। बाहर आया तो कुछ नहीं। उधर लोगों को चाण्डाल का राज्य प्रतीत हुआ, वह भी माया है। यह भी बीत गया, वह भी बीत गया। हर जीव का अपना–अपना देश और काल है।"

एक मनुष्य जीवन में मेंढकों की साठ पीढ़ियाँ बीत जाती हैं। बैक्टीरिया की तो करोड़ों पीढ़ियाँ बीत जाती होंगी।

नेपोलियन की लड़ाई को करीब पौने दो सौ वर्ष हो गये। उस समय जो घटनाएँ घटी वे देखनी हों तो योगशक्ति से देखी जा सकती हैं। प्रकाश की किरण एक सेकेन्ड में १८६००० मील की गति से चलती है। सूर्य से प्रकाश की किरण चलती है तो ८ मिनट में पृथ्वी पर पहुँचती है। आकाश में कुछ तारे यहाँ से इतने दूर हैं कि हजारों लाखों वर्षों के बाद भी, अभी तक उनकी किरणें पृथ्वी तक नहीं पहुँच पायी हैं। कोई योगी अपने मन की गति प्रकाश की गति से भी अधिक तेजवाली कर लेता है तो वह नेपोलियन के युद्ध को देख सकता है। इसी योगयुक्ति से योगिजन त्रिकालदर्शी बनते हैं। अपने चित्त की वृत्ति को काल की अपेक्षा आगे या पीछे फेंकते हैं तो ऐसा हो सकता है।

जैसे आप बैठकर सोचो कि आज सुबह क्या खाया था, कल क्या खाया था, परसों क्या खाया था, तो मन से वह देख सकते हो, जान सकते हो। ऐसे ही योगी ठोस रूप से भूत–भविष्य देख सकते हैं।

यह जो कुछ भी जानने में आता है वह सब स्वप्न में सरक जाता है। जिससे जाना जाता है वह आत्मा परमात्मा सत्य है। उस सत्य का जो अनुसन्धान करता है वह देर सबेर आत्म–साक्षात्कार करके सदा के लिए माया से तर जाता है। जो देह को 'मैं' मानता है और संसार की वस्तुओं को सच्ची समझता है वह स्वप्न से स्वपनांतर तक, युग से युगांतर तक बेचारा भटकता रहता है।

भगवान विष्णु गाधि ब्राह्मण से कहते हैं–

"हे गाधि ! तूने मुझसे माया दिखाने का वरदान माँगा था। मैंने यह माया दिखाई। चाण्डाल के शरीर में और राजा के शरीर में जो तुमने सुख दुःख देखा, उस समय सच्चा लग रहा था, अब वह स्वप्न हो गया। पानी में गोता लगाते समय जो सच्चा दिख रहा था, अब स्वप्न हो गया।"

आज से दस जन्म पहले भी जो पत्नी, पुत्र, परिवार मिला था, वह उस समय सच्चा लग रहा था, अब स्वप्न हो गया। पाँच जन्म पहले वाला भी अब स्वप्न है और एक जन्म पहले वाला भी अब स्वप्न है। इस जन्म का बचपन भी अब स्वप्न है। यौवनकाल भी अब स्वप्न हो रहा है।

आपकी दृष्टि जिस समय जगत में सत्यबुद्धि करती है उस समय जगत का आकर्षण, समस्याओं का प्रभाव और सुख-दुःख की थप्पड़ें लगती हैं। अगर आप अपने सत्यस्वरूप आत्मा का अनुसन्धान करते हो तो जगत के आकर्षण और विकर्षण दूर रह जाते है, देर सबेर अपने जगदीश्वर स्वभाव में जगकर मुक्त हो सकते हो।

उमा कहौं मैं अनुभव अपना।
सत्य हरिभजन जगत सब सपना।।

स्वप्न जैसा जगत है। दिखता है सच्चा, दिखता है ठोस लेकिन उसमें गहराई नहीं।

आत्मज्ञान का सत्संग बहुत ऊँची चीज है। कथा वार्ताएँ होना एक बात है लेकिन तात्त्विक सत्संग, ब्रह्मज्ञान का सत्संग आखिरी चीज होती है। ऐसा सत्संग सत्पात्र शिष्य को ही पचता है। ब्रह्मवेत्ता सदगुरू में ऐसा सामर्थ्य होता है जो शिष्य को तत्त्वज्ञान करा सके। रामचन्द्रजी ऐसे सदगुरू थे और हनुमानजी ऐसे सत्पात्र थे। अष्टावक्र जी ऐसे सदगुरू थे और अर्जुन ऐसा सत्पात्र था। नानक ऐसे सदगुरू थे और बाला मरदाना ऐसे सत्पात्र थे।

बहुत बहुत सदभाग्य होता है तब आदमी आत्मज्ञान की बातें सुन पाता है। आत्मज्ञान के सत्संग का मनन करने से बहुत लाभ होता है।

स्नातं तेन सर्वं तीर्थम् दातं तेन सर्वं दानम् कृतो तेन सर्वं यज्ञो.....

उसने सर्व तीर्थों में स्नान कर लिया, उसने सर्व दान दे दिये, उसने सब यज्ञ कर लिये जिसने एक क्षण भी अपने मन को आत्म-विचार में, ब्रह्मविचार में स्थिर किया।

आत्मज्ञान सुनने के बाद मनन करने की जिसमें तत्परता है उस आदमी का निवास-स्थान काशी है। आत्म-विश्रान्ति में गोता मारने वाला महापुरूष जिस पानी को छूता है वह पानी गंगाजल है, जिस वस्तु को छूता है वह प्रसाद है, जो वाक्य बोलता है वह मंत्र है। उसके लिए सारे वृक्ष चन्दन काष्ठ हैं। उसके लिए सारा विश्व नन्दन वन है। जो भीतर से खुश है, प्रसन्न है, सत्य का अनुभव करता है उसे बाहर भी सत्य का दीदार हो जाता है। जो भीतर कल्पनाओं में उलझता है वह स्वर्ग में भी सुख-दुःख की कल्पना करता है और नर्क में भी दुःख पाता है। भाग्यवशात् वह वैकुण्ठ में भी चला जाय और आत्मज्ञान में रूचि न हो तो देर सबेर उसे दुःख भी होता है।

भगवान विष्णु कहते हैं- "हे गाधि ! तू अपने चैतन्यस्वरूप मुझ अन्तर्यामी नारायण का अनुसन्धान करके, उसको पाकर सदा के लिए मेरे साथ एक हो जा। फिर तुझे माया का भ्रम नहीं देखना पड़ेगा। माया के विस्तार में सत्यबुद्धि मत करो। सत्यबुद्धि मुझ चैतन्य में करो ताकि मुक्ति का अनुभव हो जाय।"

जो आदमी माया को सत्य समझकर उलझ जाता है उसे कभी कोई महात्मा मिल जाय और आत्मज्ञान की ऊँची बात कहे तो उसे समझ में नहीं आती। महात्मा सदा वैकुण्ठ में रहते हैं अर्थात् व्यापक स्वरूप में विराजते हैं जबकि साधारण लोगों की चित्तवृत्ति कुण्ठित रहती है, देहाध्यास में जकड़ी रहती है।

अज्ञानियों का संग मिलता है ज्यादा और ज्ञानी का संग मिलता है जरा सा। ज्ञानी का जरा सा संग भी बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है।

खेतो में, बाग-बगीचों में काम के पौधों के अलावा निकम्मे घास-फूस भी उग आते हैं. उन्हें चुन-चुनकर उखाड़ना पड़ता है, तभी उपयोगी पौधे पुष्ट होकर पनप सकते हैं। उस पर फूल खिलेंगे, सुगंधित हवाएँ फैलेगी, पक्षी किल्लोल करेंगे, लोगों को सुगन्धी मिलेगी, मधुमक्खियाँ रस चूसेंगी। फूल खिलवाने के लिए निकम्मा घास-फूस हटाना पड़ता है। फूल खिलने के बाद भी निगरानी रखनी पड़ती है।

साधक के हृदय में भी आत्मज्ञान के फूल खिलें इसलिए कुसंग का कचरा पहले हटाना पड़ता है। वह खेत तो एक ही जगह रहता है जबकि साधकरूपी खेत तो चलता फिरता खेत है। जहाँ जायेगा वहाँ अज्ञान के कुसंस्कार पड़ेंगे। जहाँ जायेगा वहाँ देह को 'मैं' मानना, संसार को सच्चा मानना, विकारों का जागृत होना.... यह सब संस्कार हटाने पड़ते हैं।

साधक जब साधना में तत्पर होता है तब अपने भीतर ईश्वर का अमृत बरसता हुआ महसूस करता है। फिर साधक गलती करता है, घड़ा औंधा हो जाता है, साधक बेचारा रीता रह जाता है। साधकरूपी माली निकम्मे घास-फूल निकालते-निकालते फिर प्रमाद में पड़ जाता है। उसका बगीचा जंगल हो जाता है।

ऐसे साधकों को चाहिए कि अपना समय बचाकर सप्ताह में एक-दो दिन एकान्त कमरे में बैठ जायँ। बिल्कुल मौन और जप। कुछ भी न ले, बिल्कुल निराहार। इससे आदमी मर नहीं जाता। उसकी आयु कम नहीं होगी। महावीर ने बारह साल में सिर्फ एक साल भोजन किया था। कभी पच्चीस दिन में एक बार, कभी पन्द्रह दिन में, कभी पैंतीस दिन में तो कभी पाँच दिन में।

जब ध्यान तपस्या से उठे, भूख लगी तो खा लिया। बारह साल में ३६५ बार खाया, बस। फिर भी कबीरजी से, नानकजी से महावीर ज्यादा पुष्ट थे।

आदमी का श्वास ज्यादा चलता है तो खाने पीने की ज्यादा जरूरत पड़ती है। अगर तुम एकान्त में, निवृत्ति में बैठो और खाओ, न भी खाओ तो चल जाएगा। भूख-प्यास, ठण्डी-गरमी सहने का मनोबल बढ़ जायगा। आत्मबल बढ़ाने के लिए यह प्रयोग करने जैसा है। कभी महीने में दो दिन कभी सप्ताह में एक दिन, दो दिन, कभी चार दिन और कभी एक साथ आठ दिन मिल जाय तो और अच्छा है। इससे शरीर में से कई दिन हानिकर जन्तु दूर हो जाते हैं। आने वाली नस-नाड़ियों की बीमारियाँ भी दूर हो जाती हैं। साथ ही साथ ध्यान भजन भी बढ़ता है। उन दिनों में केवल जप करें और आसन पर बैठें। खायें-पियें कुछ नहीं, किसी से बोलें-चालें कुछ नहीं।

भगवान में मन न लगे तो भगवान के चित्र के सामने थोड़ी देर एकटक निहारो। भगवान से प्रार्थना करो किः हे भगवान ! तुममें चित्त नहीं लगता। तुम केवल इस चित्र में ही नहीं, मेरे हृदय में भी हो। तुम्हारी ही सत्ता लेकर मन चित्र-विचित्र संसार देख रहा है।

इस प्रकार भगवान से बातें करो। अपने आप से गहराई में बातें करो। कभी कीर्तन करो, कभी जप करो, कभी किताब पढ़ो, कभी श्वासोच्छवास को देखो। पहले दो तीन घण्टे उबान आ सकती है। दो तीन घण्टे धैर्य के साथ अकेले कमरे में अगर बैठ गये तो फिर चार घण्टे भी आराम से जाएँगे, चार दिन भी आराम से बीत जाएँगे और चालीस दिन भी आराम से बीत जाएँगे।

तुम अपने आत्मा में हजारों वर्ष रह सकते हो। शरीर में और भोगों में ज्यादा समय नहीं रह सकते। जैसे आदमी कीचड़ में ज्यादा समय नहीं रह सकता जबकि सरोवर की सतह पर घण्टों भर तैर सकता है। ऐसे ही विकारों में, कान्ता में, ममता में आदमी सतत नहीं रह सकता लेकिन आत्मा में

दस हजार वर्ष तक रह सकता है।

यह आत्मलाभ पाने के लिए बाहर का जो कल्पित और तुच्छ व्यवहार है उसमें से समय बचाकर अन्तर्मुख होना चाहिए। इससे तुम्हारी साधना की कमाई निखरेगी, बढ़ेगी।

राजा सुषेण को विचार आया कि, "मैं किसी जीवन के रहस्य समझने वाले महात्मा की शरण में जाऊँ। पण्डित लोग मेरे मन का सन्देह दूर नहीं कर सकते।"

राजा सुषेण गाँव के बाहर महात्मा के पास पहुँचा। उस समय महात्मा अपनी बगीची में खोदकाम कर रहे थे, पेड़–पौधे लगा रहे थे। राजा बोलाः

"बाबाजी ! मैं कुछ प्रश्न पूछने को आया हूँ।"

बाबाजी बोलेः "मुझे अभी समय नहीं है। मुझे अपनी बगीची बनानी है।"

राजा ने सोचा कि बाबाजी काम कर रहे हैं और हम चुपचाप बैठें, यह ठीक नही। राजा ने भी कुदाली फावड़ा चलाया।

इतने में एक आदमी भागता–भागता आया और आश्रम में शरण लेने को घुसा और गिर पड़ा, बेहोश हो गया। महात्मा ने उसको उठाया। उसके सिर पर चोट लगी थी। महात्मा ने घाव पोंछा, जो कुछ औषधि थी, लगाई। राजा भी उसकी सेवा में लग गया। वह आदमी होश में आया। सामने राजा को देखकर चौंक उठाः

"राजा साहब ! आप मेरी चाकरी में ? मैं क्षमा माँगता हूँ....।" वह रोने लगा।

राजा ने पूछाः "क्यों, क्या बात है ?"

"राजन् ! आप राज्य में से एकान्त में गये हो ऐसा जानकर आपकी हत्या करने पीछे पड़ा था। मेरी बात खुल गई और आपके सैनिकों ने मेरा पीछा किया, हमला किया। मैं जान बचाकर भागा और इधर पहुँचा।"

महात्मा ने राजा से कहाः "इसको क्षमा कर दो।"

राजा मान गया। उस आदमी को दूध पिलाकर महात्मा ने रवाना कर दिया। फिर दोनों वार्तालाप करने बैठे। राजा बोलाः

"महाराज ! मेरे तीन प्रश्न हैं– सबसे उत्तम समय कौन–सा है ? सबसे बढ़िया काम कौन–सा है ? और सबसे बढ़िया व्यक्ति कौन सा है ? ये तीन प्रश्न मेरे दिमाग में कई महीनों से घूम रहे हैं। आपके सिवाय उनका समाधान देने की क्षमता किसी में भी नहीं है। आप पारावार–दृष्टि हैं, आप आत्मज्ञानी हैं, आप जीवन्मुक्त हैं, महाराज ! आप मेरे प्रश्नों का समाधान कीजिए।

महात्मा बोलेः "तुम्हारे प्रश्नों का जवाब तो मैंने सप्रयोग दे दिया है। फिर भी सुनः सबसे महत्त्वपूर्ण समय है वर्त्तमान, जिसमें तुम जी रहे हो। उससे बढ़िया समय आयेगा तब कुछ करेंगे या बढ़िया समय था तब कुछ कर लेते। नहीं.... अभी जो समय है वह बढ़िया है।

सबसे बढ़िया काम कौन–सा ? जिस समय जो काम सामने आ जाय वह बढ़िया।

उत्तम से उत्तम व्यक्ति कौन ? जो तुम्हारे सामने हो, प्रत्यक्ष हो वह सबसे उत्तम व्यक्ति है।

राजा असंमजस में पड़ गया। बोलाः

"बाबाजी ! मैं समझा नहीं।"

बाबाजी ने समझायाः "राजन् ! सबसे महत्त्वपूर्ण समय है वर्त्तमान। वर्त्तमान समय का तुमने आज सदुपयोग नहीं किया होता, तुम यहाँ से तुरन्त वापस चल दिये होते तो कुछ अमंगल घटना घट जाती। यहाँ जो आदमी आया था उसका भाई युद्ध में मारा गया था। उसका बदला लेने के लिए वह तुम्हारे पीछे लगा था। मैं काम में लगा था और तुम भी अपने वर्त्तमान का सदुपयोग करते हुए मेरे

साथ लग गये तो वह बेला बीत गई। तुम बच गये।

सबसे बढ़िया का क्या ? जो सामने आ जाये वह काम सबसे बढ़िया। आज तुम्हारे सामने यह बगीची का काम आ गया और तुम कुदाली–फावड़ा लेकर लग गये। वर्त्तमान समय का सदुपयोग किया। स्वास्थ्य सँवारा। सेवाभाव से करने के कारण दिल को भी सँवारा। पुण्य भी अर्जित किया। इसी काम ने तुम्हें दुर्घटना से बचा लिया।

बढ़िया में बढ़िया व्यक्ति कौन ? जो सामने प्रत्यक्ष हो। उस आदमी के लिए अपने दिल में सदभाव लाकर सेवा की, प्रत्यक्ष सामने आये हुए आदमी के साथ यथायोग्य सदव्यवहार किता तो उसका हृदय–परिवर्तन हो गया, तुम्हारे प्रति उसका वैरभाव धुल गया।

इस प्रकार तुम्हारे सामने जो व्यक्ति आ जाय वह बढ़िया है। तुम्हारे सामने जो काम आ जाय वह बढ़िया है और तुम्हारे सामने में जो समय है वर्त्तमान, वह बढ़िया है।"

जिस समय तुम जो काम करते हो उसमें अपनी पूरी चेतना लगाओ, दिल लगाओ। टूटे हुए दिल से काम न करो। लापरवाही से काम न करो, पलायनवादी होकर न करो। उबे हुए, थके हुए मन से न करो। हरेक कार्य को पूजा समझकर करो। हनुमानजी और जाम्बवान युद्ध करते थे तो भी राम जी की पूजा समझकर करते थे। तुम जिस समय जो काम करो उसमें पूर्ण रूप से एकाग्र हो जाओ। काम करने का भी आनन्द आयेगा और काम भी बढ़िया होगा। जो आदमी काम उत्साह से नहीं करता, काम को भटकाता है उसका मन भी भटकने वाला हो जाता है। फिर भजन–ध्यान के समय भी मन भटकाता रहता है। इसलिए,

Work while you work and play while you play, that is the way to be happy and gay.

जिस समय जो काम करो, बड़ी सूक्ष्मदृष्टि से करो, लापरवाही नहीं, पलायनवादिपना नहीं। जो काम करो, सुचारू रूप से करो। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय काम करो। कम–से–कम समय लगे और अधिक से अधिक सुन्दर परिणाम मिले इस प्रकार काम करो। ये उत्तम कर्त्ता के लक्षण हैं।

जिस समय जो व्यक्ति जो सामने आ जाय उस समय वह व्यक्ति श्रेष्ठ है ऐसा समझकर उसके साथ व्यवहार करो। क्योंकि श्रेष्ठ में श्रेष्ठ परमात्मा उसमें है न ! इस प्रकार की दृष्टि आपके स्वभाव को पवित्र कर देगी।

यह व्यवहारिक वेदान्त है।

हरिर व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रकट होई मैं जाना॥

स्वार्थ की जगह पर स्नेह ले आओ। सहानुभूति और सच्चाई लाओ। फिर आपका सर्वांगीण विकास होगा और आप में सत्संग का प्रसाद स्थिर होने लगेगा।

ॐ शान्तिः ॐ.....ॐ.....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सेवाभगत और मेवाभगत

भगवान बुद्ध ने एक बार घोषणा की कि:

"अब महानिर्वाण का समय नजदीक आ रहा है। धर्मसंघ के जो सेनापति हैं, कोषाध्यक्ष हैं, प्रचार मंत्री हैं, व्यवस्थापक हैं तथा अन्य सब भिक्षुक बैठे हैं उन सबमें से जो मेरा प शिष्य होना चाहता हो, जिसको मैं अपना विशेष शिष्य घोषित कर सकूँ ऐसा व्यक्ति उठे और आगे आ जाये।"

बुद्ध का विशेष शिष्य होने के लिए कौन इन्कार करे ? सबके मन में हुआ कि भगवान का विशेष शिष्य बनने से विशेष मान मिलेगा, विशेष पद मिलेगा, विशेष वस्त्र और भिक्षा मिलेगी।

एक होते हैं मेवाभगत और दूसरे होते हैं सेवाभगत। गुरू का मान हो, यश हो, चारों और बोलबाला हो तब तो गुरू के चेले बहुत होंगे। जब गुरू के ऊपर कीचड़ उछाला जायेगा, कठिन समय आयेगा तब मेवाभगत पलायन हो जाएँगे, सेवाभगत ही टिकेंगे।

बुद्ध के सामने सब मेवाभगत सत्शिष्य होने के लिये अपनी ऊँगली एक के बाद एक उठाने लगे। बुद्ध सबको इन्कार करते गये। उनको अपना विशेष उत्तराधिकारी होने के लिए कोई योग्य नहीं जान पड़ा। प्रचारमंत्री खड़ा हुआ। बुद्ध ने इशारे से मना किया। कोषाध्यक्ष खड़ा हुआ। बुद्ध राजी नहीं हुए। सबकी बारी आ गई फिर भी आनन्द नहीं उठा। अन्य भिक्षुओं ने घुस-पुस करके समझाया कि भगवान के संतोष के खातिर तुम उम्मीदवार हो जाओ मगर आनन्द खामोश रहा। आखिर बुद्ध बोल उठेः

"आनन्द क्यों नहीं उठता है ?"

आनन्द बोलाः "मैं आपके चरणों में आऊँ तो जरूर, आपके कृपापात्र के रूप में तिलक तो करवा लूँ लेकिन मैं आपसे चार वरदान चाहता हूँ। बाद में आपका सत्शिष्य बन पाऊँगा।"

"वे चार वरदान कौन-से हैं ?" बुद्ध ने पूछा।

"आपको जो बढ़िया भोजन मिले, भिक्षा ग्रहण करने के लिए निमंत्रण मिले उसमें मेरा प्रवेश न हो। आपका जो बढ़िया विशेष आवास हो उसमें मेरा निवास न हो। आपको जो भेंट-पूजा और आदर-मान मिले उस समय मैं वहाँ से दूर रहूँ। आपकी जहाँ पूजा-प्रतिष्ठा होती हो वहाँ मुझे आपके सत्शिष्य के रूप मे घोषित न किया जाए। इस ढंग से रहने की आज्ञा हो तो मैं सदा के लिए आपके चरणों में अर्पित हूँ।"

आज भी लोग आनन्द को आदर से याद करते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मोहमुदगरः आत्मविचार

जो लोग सिंध में रहते थे और विदेशों में जाकर कमाते थे उनको सिंधवर्की कहा जाता था।

सिंधवर्की खूबचन्द अपनी पत्नी, माँ बाप को छोड़कर विदेश में कमाने गया। धन्धे–रोजगार में खूब बरकत रही। साल–दो–साल के अंतर पर घर आता–जाता रहा। इसी बीच उसको एक बेटा हो गया। फिर वह कमाने के लिए विदेश चला गया और इधर बेटे को न्यमोनिया हुआ और वह चल बसा। पत्नी ने सोचा किः "पति को खबर देने से बेटा लौटेगा तो नहीं और पति वहाँ बेचैन हो जाएगा।" पत्नी ने खूबचन्द को बेटे के अवसान की खबर नहीं दी।

कुछ समय बाद खूबचन्द जब घर लौटने को हुआ तब उसकी पत्नी ने एक युक्ति रची। अपनी पड़ोसन के गहने ले आयी और पहन लिये। खूब सज–धजकर पति का स्वागत करने के लिए तैयार हो गयी। पति घर आया। पत्नी ने स्वागत किया। पति ने पूछाः "बेटा किशोर कहाँ है ?"

"होगा कहीं अड़ोस–पड़ोस में। खेलता होगा। आप स्नानादि कीजिए, आराम कीजिए।"

खूबचन्द ने स्नान भोजन किया। फिर आराम करने लगा तो पत्नी चरणसेवा करने आ गई। बात–बात में कहने लगीः

"देखिये, ये गहने कितने सुन्दर हैं ! पड़ोसन के हैं और वह वापस माँग रही है मगर मैं उसे वापस देना नहीं चाहती।"

पति बोलाः "पगली ! किसी की अमानत है, उसे वापस देने में विलंब कैसा ? ऐसा क्यों करती है ? तेरा स्वभाव क्यों बदल गया ?"

"जा दे आ। पहले वह काम कर, जा गहने दे आ।"

"नहीं नहीं, ये तो मेरे हैं।" पत्नी नट गई।

"तू बोलती है कि पड़ोसन के हैं ? मैंने तुझे बनवाकर नहीं दिये तो ये गहने तेरे कैसे हो गये ? तुम्हारे नहीं है फिर उनमें अपनापन क्यों करती है ? ऐसी क्या मूर्खता ? जा, गहने दे आ।"

लम्बी–चौड़ी बातचीत के बाद वह सचमुच में गहने पड़ोसन को दे आई, फिर आकर पति से बोलीः

"जैसे, वे गहने पराये थे और मैं अपना मान रही थी तो बेवकूफ थी, ऐसे ही वह पाँच भूतों का पुतला था न, हमारा किशोर..... वह पाँच भूतों का था और पाँच भूतों में वापस चला गया। अब मुझे दुःख होता है तो मैं बेवकूफ हूँ न ?"

पति बोलाः "अच्छा ! तूने चि ी क्यों नहीं लिखी ?"

"चि ी इसलिए नहीं लिखी कि आप शायद वहाँ दुःखी हों। ऐसी बेवकूफी की चि ी क्या लिखना ?"

पति ने कहाः "ठीक है, बात तो सही है। पाँच भूतों के पुतले बनते हैं और बिगड़ते है। किशोर की आत्मा और हमारी आत्मा एक है। आत्मा की कभी मौत नहीं होती और शरीर कभी शाश्वत टिकते नहीं। कोई बात नहीं.....।"

वह महिला निर्दय नहीं थी, समझदार थी।

अनुचित प्रसंग में, मोह के प्रसंग में, अशांति के प्रसंग में अगर तुम कृत उपासक हो, अगर तुम्हारी कोई समझ है तो ऐसे दुःख या अशांति के प्रसंग भी तुम्हें अशांति नहीं दे सकेंगे।
अष्टावक्र जी कहते हैं–

न त्वं विप्रदिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।
असंगोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव॥

'तू ब्राह्मण आदि जाति नहीं है और न तू चारों आश्रम वाला है, न तू आँख आदि इन्द्रियों का विषय है वरन् तू असंग, निराकार, विश्व का साक्षी है ऐसा जानकर सुखी हो।'

जैसे तुम शरीर के साक्षी हो वैसे ही तुम मन के साक्षी हो, बुद्धि के साक्षी हो, सुख और दुःख के साक्षी हो, सारे संसार के साक्षी हो।

धर्माऽधर्मो सुखं दुःखं मानसानि न ते विभो।
न कर्त्ताऽसि न भोक्ताऽसि मुक्त एवासि सर्वदा॥

'हे व्यापक ! मन सम्बन्धी धर्म और अधर्म, सुख और दुःख तेरे लिए नहीं है और न तू कर्त्ता है और न तू भोक्ता है। तू तो सदा मुक्त ही है।'

सुख और दुःख, धर्म अधर्म, पुण्य और पाप ये सब मन के भाव हैं, उस विभु आत्मा के नहीं। ये भाव सब मन में आते हैं। तुम मन नहीं हो। ये भाव तुम्हारे नहीं हैं। तुम विश्वसाक्षी हो।

रानी मदालसा अपने बच्चों को उपदेश देती थीः **न कर्त्ता असि न भोक्ता असि। शुद्धोऽसि.... बुद्धोऽसि... निरंजनो नारायणोऽसि....**

जो मूढ़ अपने को बँधन में मानता है वह बँध जाता है और जो अपने मुक्त स्वभाव, आत्मस्वरूप, आत्मा का मनन करता है वह मुक्त हो जाता है।

अष्टावक्र बहुत ऊँची बात कह रहे हैं। बुद्ध तो सात कदम चले, बाद में कहते हैं– "संसार दुःखरूप है, दुःख का उपाय है, दुःख से छूटा जा सकता है, मुक्ति हो सकती है।" जबकि अष्टावक्र तो प्रारंभ से ही आखिरी सत्य कह देते हैं– "तू पाँच भूतों का पुतला नहीं है....।" यह एकदम स्वच्छ सीधी सी बात है लेकिन हम लोगों की उपासना नहीं है, गैर–संस्कार चित्त में पड़ गये हैं अतः कुछ करो। इतना–इतना कमाओ, इतना खाओ, इतना धरो आदि.... बाद में कहीं सुखी होंगे।

सुख का दरिया लहरा रहा है, सुख का सिन्धु आपके पास है। वह सुखस्वरूप परमात्मा आपको दुःखी करना भी नहीं चाहता। जैसे बच्चों पर दुःख पड़े तो माँ बेचैन हो जाती है ऐसे ही आप पर अगर दुःख का प्रभाव पड़ता है तो सब माँ की भी जो माँ है वह परमात्मा, वह अस्तित्व कोई खुश नहीं होता। ईश्वर आपको दुःखी करके खुश नहीं होता, बल्कि आपको सुखी देखकर खुश होता है। ईश्वर कहो, गुरू कहो.... एक ही तत्त्व के दो नाम हैं।

ईश्वरो गुरूरात्मेति मूर्तिभेदे विभागिनो।
व्योमवत् व्याप्तदेहाय तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

हम जब शांत होते हैं, मौन होते हैं, अपनी ओर लौटते हैं, अपने घर की ओर जाते हैं तो भगवान और गुरू प्रसन्न होते हैं। जितना–जितना आदमी मौन होता है, निर्वासनिक होता है, निःसंकल्प होता है उतना–उतना वह महान् हो जाता है। जितना–जितना वह बहिर्मुख होता है उतना–उतना तुच्छ होता है, दुःखी होता है। फिर कुछ करके, कुछ खाकर, कुछ देखकर आदमी सुखी होने का प्रयास करता है। वह सुख भी टिकता नहीं है।

अष्टावक्र जी कहते हैं– सुखी होने के लिए कुछ करना नहीं है, केवल जानना है। कोई मजदूरी करने की जरूरत नहीं है। केवल चित्त की विश्रांति...। चित्त जहाँ–जहाँ जाता है उसको देखो। जितना अधिक तुम शांत बैठ सकोगे उतना तुम महान हो जाओगे।

कीर्तन करते–करते देहाध्यास को भूलना है। जप करते–करते इधर–उधर की बातों को भूलना है। जब इधर–उधर की बातें भूल गये फिर जप भी भूल जाओ तो कोई हरकत नहीं।

शांतो भव। सुखी भव।

भगवान विष्णु की पूजा में स्तुति आती हैः

शांताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम्॥

भगवान को मेघवर्ण क्यों कहा ? व्यापक चीज सदा मेघवर्णी होती है, गगन सदृश होती है। आकाश नीला दिखता है, सागर का पानी नीला दिखता है। ऐसे जो परमात्मा है, जो विष्णु है, जो सबमें बस रहा है वह व्यापक है इसलिए उसको मेघवर्ण कह दिया।

शिवजी का चित्र, विष्णुजी का चित्र, रामजी का चित्र, श्रीकृष्ण का चित्र इसीलिए नीलवर्ण बनाये हैं जानकारों ने। वास्तव में परमात्मा का कोई रंग नहीं होता। परमात्मा की व्यापकता दिखाने के लिए नीलवर्ण की कल्पना की गई है।

इसी प्रकार आपका आत्मा किसी वर्ण का नहीं है, किसी जाति का नहीं है, किसी आश्रम का नहीं है। लेकिन वह जिस देह में आता है उस देह के मुताबिक वर्णाश्रमवाला हो भासता है। अपने को ऐसा मानते–मानते सुखी–दुःखी होता है, जन्मता–मरता है। जीवपने की मान्यता बदल जाय तो भीतर इतना दिव्य खजाना छुपा है, इतनी गरिमा छुपी है कि उसको सुखी होने के लिए न स्वर्ग की जरूरत है न इलेक्ट्रोनिक साधनों की जरूरत है न दारू की जरूरत है। सुखी होने के लिए किसी भी चीज की जरूरत नहीं है। शरीर जिन्दा रखने के लिए किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं है। आत्मा ऐसा सुख स्वरूप है। .....और मजे की बात है कि संसार में बिना वस्तु के कोई सुखी दिखता ही नहीं। वस्तु मिलती है तो वह सुखी होता है। अज्ञान की बलिहारी है !

वास्तव में वस्तुओं से सुख नहीं मिलता अपितु वस्तुओं में सुख है यह मानने की बेवकूफी बढ़ती जाती है।

चित्त जब अन्तर्मुख होता है तब जो शांति मिलती है, आत्मसुख की झलक मिलती है उसके आगे संसार भर की चीजों का सुख काकविष्ठा जैसा तुच्छ है। फिर संसार के पदार्थ आकर्षित नहीं कर सकते। एक बार खीर खाकर तृप्त हुए हो तो फिर भिखारिन के जूठे टुकड़े तुम्हें आकर्षित नहीं करेंगे। एक बार तुम्हें सम्राट पद मिल जाय फिर चपरासी की नौकरी तुम्हें आकर्षित नहीं करेगी।

ऐसे ही मन को एक बार परमात्मा का सुख मिल जाय, एक बार ध्यान का सुख मिल जाय, मौन होते–होते परमात्म–शांति का पूर्ण सुख मिल जाय तो फिर मन तुम्हें धोखा नहीं देगा। मन का स्वभाव है कि जहाँ उसको सुख मिल जाता है फिर उसी का वह चिन्तन करता है। उसी के पीछे तुम्हें दौड़ाता है।

संसार की चीजों में जो सुख की झलकें मिलती हैं वे अज्ञानवश इन्द्रियों के द्वारा मिलती हैं। इसीलिए अज्ञानवश जीव बेचारे उनके पीछे भागे जाते हैं।

सत्संग के द्वारा, पुण्य प्राप्ति के द्वारा, संतों की...... गुरू की कृपा के द्वारा जब आत्मसुख की झलक मिलती है तब संसार के सारे सुख की झलकें व्यर्थ हो जाती हैं। भरथरी महाराज ने इसी को लक्ष्य करके कहा होगाः

जब स्वच्छ सत्संग कीनो तब कछु कछु चीन्यो
मूढ़ जान्यो आपको......

'रथ में घूमकर सुख लेना, फूलों की शैया में सुख लेना... ये सब मूढ़ता के खेल थे। सुख तो मेरे आत्मा में यो ही भरा हुआ था।'

सुख को सब चाहते हैं। आपको अन्तर्मुखता से जितना–जितना सुख मिलता जाता है उतने–

उतने आप महान् होते जाते हैं। बहिर्मुखता से जो सुख का एहसास होता है, वह केवल अभ्यास होता है।

चैतन्य परमात्मारूपी सरोवर में एक लहर उठी, उसका नाम चिदावली। चिदावली से बुद्धिवृत्ति हुई। बुद्धि में विकल्प आये तो मन हुआ। मन ने चिन्तन किया तो चित्त कहलाया। देह के साथ अहंबुद्धि की तो अहंकार हुआ। वह वृत्ति इन्द्रियों के द्वारा जगत में आयी। फिर जगत में जात-पात आ गई। फिर वर्ण आये, आश्रम आये, राष्ट्रीयता आयी, कालापना आया, गोरापना आया। ये सब हमने थोप लिये।

परमात्मारूपी सरोवर में स्पन्दनरूपी चिदावली हुई। चिदावली में फिर बुद्धिवृत्ति। बुद्धिवृत्ति से संकल्प-विकल्प हुए तो मनःवृत्ति। उस वृत्ति ने चिंतन किया तो चित्त कहलाया। उस वृत्ति ने देह में अहं किया तो अहंकार कहलाया।

तीन प्रकार के अहंकार हैं-

पहलाः 'मैं शरीर हूँ... शरीर के मुताबिक जाति वाला, धर्मवाला, काला, गोरा, धनवान, गरीब इत्यादि हूँ....' ऐसा अहंकार नर्क में ले जाने वाला है। देह को मैं मानकर, देह के सम्बन्धियों को मेरे मानकर, देह से सम्बन्धित वस्तुओं को मेरी मानकर जो अहंकार होता है वह क्षुद्र अहंकार है। क्षुद्र चीजों में अहंकार अटक गया है। यह अहंकार नर्क में ले जाता है।

दूसराः "मैं भगवान का हूँ.... भगवान मेरे हैं.....' यह अहंकार उद्धार करने वाला है। भगवान का हो जाय तो जीव का बेड़ा पार है।

तीसराः 'मैं शुद्ध बुद्ध चिदाकाश, मायामल से रहित आकाशरूप, व्यापक, निर्लेप, असंग आत्मा, ब्रह्म हूँ।' यह अहंकार भी बेड़ा पार करने वाला है।'

प्रह्लाद ने किसी कुम्हार को देखा कि वह भ` को आग लगाने के बाद रो रहा है। वह आकाश की ओर हाथ उठा-उठाकर प्रार्थनाएँ किये जा रहा है.... आँसू बहा रहा है।

प्रह्लाद ने पूछाः "क्यों रोते हो भाई ? क्यों प्रार्थनाएँ करते हो ?"

कुम्हार ने कहाः "मेरे भ` (पजावे) के बीच के एक मटके में बिल्ली ने अपने द बच्चे रखे थे। मैं उन्हें निकालना भूल गया और अब चारों और आग लग चुकी है। अब बच्चों को उबारना मेरे बस की बात नहीं है। आग बुझाना भी संभव नहीं है। मेरे बस में नहीं है कि उन मासूम कोमल बच्चों को जिला दूँ लेकिन वह परमात्मा चाहे तो उन्हें जिन्दा रख सकता है। इसलिए अपनी गलती का पश्चाताप भी किये जा रहा हूँ और बच्चों को बचा लेने के लिए प्रार्थना भी किये जा रहा हूँ किः

"हे प्रभु ! मेरी बेवकूफी को, मेरी नादानी को नहीं देखना... तू अपनी उदारता को देखना। मेरे अपराध को न निहारना..... अपनी करूणा को निहारना नाथ ! उन बच्चों को बचा लेना। तू चाहे तो उन्हें बचा सकता है। तेरे लिए कुछ असम्भव नहीं। हे करूणासिंधो ! इतनी हम पर करूणा बरसा देना।'

कुम्हार का हृदय प्रार्थना से भर गया। अनजाने में उसका देहाध्यास खो गया। अस्तित्व ने अपनी लीला खेल ली।

भ` में मटके पक गये। जिस मटके में बच्चे बैठे थे वह मटका भी पक गया लेकिन बच्चे कच्चे के कच्चे..... जिन्दे के जिन्दे रहे।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।

वह ईश्वर चाहे तो क्या नहीं कर सकता ? वह तो सतत करता ही है।

परमात्मा तो चाहता है, अस्तित्व तो चाहता है कि आप सदा के लिए सुखी हो जाओ।

इसीलिए तो सत्संग में आने की आपको प्रेरणा देता है। अपनी अक्ल और होशियारी से तो कर–कर के सब लोग थक गये हैं। परमात्मा की बार–बार करूणा हुई है और हम लोग बार–बार उसे ठुकराते हैं फिर भी वह थकता नहीं है। हमारे पीछे लगा रहता है हमें जगाने के लिए। कई योजनाएँ बनाता है, कई तकलीफें देता है, कई सुख देता है, कई प्रलोभन देता है, संतों के द्वारा दिलाता है।

वह करूणासागर परमात्मा इतना इतना करता है, तुम्हारा इतना ख्याल रखता है। बिल्ली के बच्चों को भट्ठे में बचाया ! बिल्ली के बच्चों को जलते भट्ठे में बचा सकता है तो अपने बच्चों को संसार की भ ी से बचा ले और अपने आपमें मिला ले तो उसके लिए कोई कठिन बात नहीं है।

अस्तित्व चाहता है कि तुम अपने घर लौट आओ.... संसार की भ ी में मत जलो। मेरे आनन्द–सागर में आओ.... हिलोरें ले रहा हूँ। तुम भी मुझमें मिल जाओ।

ॐ....ॐ....ॐ.....ॐ.....ॐ.....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ध्यान–प्रसाद

सदगुरू सत्पात्र शिष्य को अपना हृदय खोलकर आत्मिक अनुभूति का प्रसाद दे रहे हैं–

मैं चिदघन चैतन्य.... सबके दिल की धड़कनों को सत्ता देने वाला शांत आत्मा हूँ। चित्त की अशांति के कारण किसी–किसी शरीर में मैं अशांत दिखता हूँ। चित्त के दुराचार से कहीं कहीं मैं दुराचारी दिखता हूँ। चित्त के सदाचार से कहीं मैं सदाचारी दिखता हूँ। चित्त के शांत होने से मैं कहीं शांत दिखता हूँ। वास्तव में, मैं चैतन्यघन, मुक्त महेश्वर तत्त्व हूँ। मेरा मुझको धन्यवाद है।

मैं शांत, अशांत, सज्जन और दुर्जन, अनेक स्वांगों में, अनेक रंगों में, ढंगों में, अनेक देहों में मैं विषय–सुख भोग रहा हूँ। दैत्यों में ईर्ष्या की आग–सा लग रहा हूँ। ऋषियों में तप कर रहा हूँ। फिर भी मैं कुछ नहीं करता। यह मेरी अष्टधा प्रकृति है। यह मेरी आह्लादिनी शक्ति है जिससे यह सब प्रतीत हो रहा है। वास्तव में बना कुछ नहीं।

यह स्वप्न तुल्य खेल पाँच महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार... इस अष्टधा प्रकृति से है। मैं सदैव निर्लेप और पर हूँ। जैसे आकाश में सब चीजें हैं, सब चीजों में आकाश है फिर भी चीजों के बनने बिगड़ने में, बढ़ने–घटने में आकाश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हजारों मकान बढ़ जाएँ या हजारों मकान गिर जाएँ फिर भी आकाश को कुछ नहीं होता। आकाश सबमें है फिर भी सबसे न्यारा है।

ऐसे ही मैं चैतन्य आकाश हूँ। चिदघन चैतन्य आत्मा हूँ। मेरी कभी मृत्यु नहीं होती क्योंकि मेरा जन्म ही नहीं हुआ। मुझे कोई पुण्य नहीं... मुझे कोई पाप नहीं। पुण्य और पाप तो मन को होता है, तन को होता है। मैं तो तन–मन से परे साक्षी, शान्त, शुद्ध, बुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ। आकाश की तरह निर्लेप....।

ऐ मेरे मन ! अगर तू गुरू तत्त्व में जग जाएगा तो सुखी हो जायेगा। अगर तू इन्द्रियों के साथ जुड़कर विकारों को भोगेगा तो नाश को प्राप्त होगा। आज तक विकारों में परेशान होता ही आया है। इसलिए अब तू ऋषियों के अनुभव की तरफ चल। मुझ चैतन्य के प्रसाद को पाकर सदा–सदा के लिए सुखी हो जा। अन्यथा मैं तुझसे दोस्ती तोड़ दूँगा। आज तक तू मुझे गुलाम बनाकर मेरा नाश कर रहा था। दो आँख से जुड़कर देखने की इच्छा से बाहर भटक रहा था। कान से जुड़कर सुनने की इच्छा से भटक रहा था। हिरन बना तो भी मारा गया। पतंग बना तो भी मारा गया। हे मेरे मन ! जिस–जिस शरीर में गया वहाँ दुःखी रहा। अब तू अपने आप, चैतन्य स्वभाव की ओर, अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अणु से भी अणु और महान् से भी महान् परमेश्वर स्वभाव की ओर चल। अपने उस महान् स्वभाव को याद करके उसमें लीन हो जा।

हे बुलबुले ! हे तरंग ! तुम किनारों से टकराओगे, टूटोगे, फूटोगे, फिर बनोगे फिर बिगड़ोगे। हे तरंग ! तू अपने जल तत्त्व को जान ले। हे बुलबुला ! तू अपने जल तत्त्व को जान ले।

हे मनरूपी बुलबुला ! हे बुद्धिरूपी तरंग ! तू अपने चैतन्य स्वभाव को जान ले। उसका स्वभाव एक ध्वनि 'ॐ' कार है। 'मैं चैतन्य हूँ' ऐसा चिन्तन करके 'ॐ' कार का गुँजन कर दे। अपने चैतन्य स्वभाव में शीघ्र जाग जा। चैतन्य के प्रसाद से चैतन्यमय हो जा। ॐ....ॐ...ॐ....

मैं निर्भय हूँ..... मैं शांत सच्चिदानंद आत्मा हूँ.... मुझे पता न था। जन्म–मृत्यु से पार मैं तो अपने स्वभाव को भूल प्रकृति से मिलकर बार–बार जन्मता–मरता–सा दिखता था लेकिन मैं जन्मता मरता नहीं था। आज मैं भ्रांति से जागा हूँ।

ॐ....ॐ.....ॐ......

समता जीवन है। ईश्वरार्पणबुद्धि जीवन है। ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान ही सच्चा ज्ञान और सच्चे जीवन का प्रागट्य है। ब्रह्मात्मैक्य का ज्ञान ही वास्तविक जीवन का द्वार खोलता है। यह आत्मा परमात्मा है। यह आत्मा ब्रह्म है। यह आत्मा शुद्ध बुद्ध चिदघन चैतन्य है। यह आत्मा ही सब देवों का देव है, सर्व कालों का काल है। यह हमारा आत्मा ही परब्रह्म परमात्मा है। यह आत्मा ही जननियंता है। यही हमारे अन्तःकरण का नियमन कर रहा है। यही हमारी आँखों को देखने की शक्ति देता है। यही परमेश्वर हमारे साथ था, हमें पता न था। यही आनन्दकन्द हमारा आत्मा था हमें मालूम न था।

'मरने के बाद कहीं जाएँगे और परमेश्वर मिलेंगे' यह तो शुरूआत में बच्चों को थोड़ा-सा मोटा मोटा ज्ञान देने की व्यवस्था थी। जब बुद्धि सूक्ष्म होती है तो पता चलता हैः

जो बिछड़े हैं प्यारे से
दर बदर भटकते फिरते हैं।
हमारा यार है हममें
हमन को बेकरारी क्या ?

हमारा राम हमारा आत्मा है। हमारा श्याम हमारा आत्मा ही है। हमारा वि ल हमारा आत्मा ही है। वही आत्मा परमात्मा है। घड़े का आकाश ही महाकाश है। तरंग का जल ही सागर का जल है।

ऐसे ही चित्त में जो चेतना है, व्यापक ब्रह्माण्ड में वही की वही चेतना है।

ॐ.....आनन्द..... खूब आनन्द...

जो श्रीकृष्ण हैं वह तुम हो। जो श्रीराम हैं वह तुम हो। जो शिव हैं वह तुम हो। जो जगदम्बा हैं वह तुम हो। वे अपने चैतन्य स्वभाव को जानते हैं और हम नहीं जानते थे। अब जान लिया तो बन गया काम।

लाख चोर्यासी के चक्कर से थका, खोली कमर।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा ?

खूब आनन्द.... मधुर आनन्द..... मधुर शान्ति.... आत्म शांति.....

परमात्म-प्रसाद में हम परितृप्त हो रहे है। अब हमें यह वासना नहीं रही कि हम मरकर भगवान के लोक में जाएँगे। यह बेवकूफी भी हमने छोड़ दी। मरने के बाद भगवान मिलेगा यह तो बालकों को सिखाया गया था और बालकों ने सिखाया था। ब्रह्मवेत्ता कभी ऐसा नहीं सिखाते कि मरने के बाद भगवान मिलेगा। अभी तू वह चैतन्य हैः **तत्त्वमसि**। तेरा ही स्वभाव है 'ॐ'कार गुंजाना। 'ॐ'कार तेरे आत्म-स्वभाव से निकलता है। इसलिए तू अभी चैतन्य है।

दुराचारी मन ने, पापाचारी इच्छाओं ने, भयभीत विचारों ने राग-द्वेष के तरंगों ने तुम्हें अपनी महिमा से वंचित रखा था। अब गुरू का ज्ञान पचाने का अधिकार हो रहा है इसलिए भय के विचार, राग-द्वेष की आग, विषमता की चेष्टाएँ आदि को विदा देकर देहाध्यास को छोड़। गुरू अपने परमात्म-भाव में स्थित होकर तुम्हें आत्मा में जगा रहे हैं जो वास्तव में सत्य है। यही सर्व सफलताओं की कुंजी है। 'मैं आत्मा हूँ' यह बिल्कुल हकीकत है। 'मैं चैतन्य हूँ' यह बिल्कुल सच्ची बात है। 'मेरा आत्मा ही परमात्मा है' बिल्कुल निःसन्देह है।

मैं अपने अनुभूत आत्मस्वभाव में जग रहा हूँ। देह की मान्यताओं से मैं मर रहा था और जन्म हो रहा था। अब आत्मा के स्वभाव से मैं अपने अमर स्वभाव में आ रहा हूँ।

शिष्य के ये अनुभवयुक्त वचन सुनकर गुरूवाणी भीतर से प्रकट हुईः

'हे पुत्र ! इस देहाध्यास ने तुझे चिर काल से बाँध रखा था। अब ॐकार का गुँजन करके देहाभिमान को भगाकर आत्म-अभिमान को जगा दे। काँटे से काँटा निकलता है। जीवभाव को हटाने

के लिए अपने चैतन्य स्वभाव को, अपने आत्मस्वभाव को जगाओ। विकार और विषयों के आकर्षण को हटाने के लिए अपने आत्मानन्द को जगाओ। अपने आत्मा के सुख में सुखी हो जाओ तो बाहर का सुख तुम्हें क्यों बाँधेगा ? उसकी कहाँ ताकत है तुम्हें बाँधने की ? तुम्हीं बँध जाते थे वत्स ! अब तुम मुझ मुक्त आत्मा की शरण में आये हो तो तुम भी मुक्त हो जाओ। ले लो यह ॐकार की गुँजन और ज्ञान की कैंची। काट दो मोह–ममता के जाल को। तुम्हें बाँध सके या नर्कों में ले जा सके अथवा स्वर्ग में फँसा सके ऐसी ताकत किसी में भी नहीं। तुम ही नर्क और स्वर्ग के रास्ते बनाकर उसमें पचने और फँसने जाते थे, अज्ञान के कारण। अब ज्ञान के प्रसाद से तुम्हारा अज्ञान भाग गया। अगर थोड़ा रहा हो तो मार दो 'ॐ' की गदा फिर से। प्रकट कर दो अपना आनन्द। प्रकट कर दो अपनी मस्ती। प्रकट कर दो अपनी निर्वासनिकता। मुझे अब कुछ नहीं चाहिए, क्योंकि सर्व मैं ही बना बैठा हूँ। मुझे नर्क का भय नहीं, स्वर्ग की लालसा नहींष मृत्यु मेरी होती नहीं। जन्म मेरा कभी था नहीं। मैं वह आत्मा हूँ।

तुम सब आत्मा ही हो। सब परमेश्वर हो। मैं भी वही हूँ। तुम भी वही हो। जो मैं हूँ वही तुम भी हो। जो तुम हो वह मैं हूँ।

हे किल्लोल करते पक्षी ! तुम भी चैतन्य देव हो। हे गगनगामी योगी ! तुम अपने चैतन्य स्वभाव को जानो। देह से जुड़कर तुम कब तक आकाशगमन करते रहोगे ? तुम तो चिदाकाश स्वरूप में विश्रान्ति पा लो।

हे आकाशचारी सिद्धों ! आकाश में विचरण करने वाले उत्तम कोटि के साधकों ! तुम अपने साध्य स्वभाव को जान लो। तुम तो धन्य हो ही जाओगे, तुम्हारी धन्यता का होना प्राकृतिक जीवों के लिए बहुत कुछ आशीर्वाद हो जाएगा।

हे सिद्धों ! तुम परम सिद्धता को पा लो। हे साधकों ! तुम परम साध्य को पा लो। परम साध्य तुम्हारा परमात्मा है न ! खूब मधुर अलौकिक अनुभूति में तुम गोता मारते जाओ। तुम अगर आनन्दस्वरूप न होते, सुखस्वरूप न होते तो अभी अपने आत्मस्वभाव की बात सुनते तुम इतने पवित्र, शांत और सुखस्वरूप नहीं हो सकते थे। तुम पहले से ही ऐसे थे। ज्यों–ज्यों भूल मिटती है त्यों–त्यों तुम्हें अपने स्वभाव की शांति और मस्ती आती है।

जय हो....! प्रभु तेरी जय हो....! हे गुरूदेव तुम्हारी जय हो....!

ना जीना है ना मरना है मगन अपने में रहना है।
आन पड़े सो सहना है,
आतम नशे में देह भुलाकर साक्षी होकर रहना है॥

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संगति करें यदि संत की तो चित्त समता पाय है।
यदि दुर्जनों में बैठते बुद्धि बिगड़ तो जाय है।
दुःसंग में बैठे सदा सत्संग में ना जा सके।
सुख है यहाँ या दुःख है कैसे इन्हें समझा सकें॥

निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा मार्ग ही दिखलाय हैं।
दृढ़ ग्रन्थि चिज्जड़ खोलने की युक्ति नहीं बतलाय हैं।
निस्संग होने के सबब से ईश भी रूक जाय है।

गुरू गाँठ खोलन रीति तो गुरूदेव ही बतलाय है॥

गुरूदेव अदभुत रूप है परधाम माँहि विराजते।
उपदेश देने सत्य का इस लोक में आ जावते।
दुर्गम्य का अनुभव करा भय से परे ले जावते।
पर धाम में पहुँचाय कर स्वराज्य पद दिलवावते॥
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ
ना भोग जिसको खींचते ना क्षोभ मन में आय है।
कैसी सुहावनी वस्तु हो ना लोभ मन उपजाय है।
है वस्तु सच्ची कौन-सी किस वस्तु माँही सार है।
उस वस्तु की हो खोज उसका ज्ञान में अधिकार है॥
अनुक्रम
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

......तो कुछ नहीं तुमने किया

मोटर फिटन पर की सवारी अश्वगज पर चढ़ चुके।
देशों दिशावर में फिरे आकाश में भी उड़ चुके।
छाना किये हो खाक अब तक जन्म निष्फल ही गया।
पहुँचे नहीं यदि आत्मपुर तो कुछ नहीं तुमने किया॥१॥

ऊँचे चुनाये महल सुन्दर, बाग बगीचे लगा।
हथियार लेकर हाथ में, रण से दिया शत्रु भगा।
दे दान या कर यज्ञ यश चारों तरफ फैला दिया।
नहीं प्राप्त कीन्हा आत्मयश तो कुछ नहीं तुमने किया॥२॥

मीठे सुरीले राग कानों में सदा पड़ते रहे।
इतिहास कविता संहिता सारी उमर सुनते रहे।
किस्से कहानी रात दिन सुन व्यर्थ आयु गँवा दिया।
चर्चा सुनी नहीं आत्म की तो कुछ नहीं तुमने किया॥३॥

आसन तकिये को लगा सोये मुलायम सेज पर।
तरूणी सदा करती रही सेवा तुम्हारी जन्म भर।
नंगे पदों नहीं भूमि ऊपर एक पग भी धर दिया।
नहीं स्पर्श आत्मा का किया तो कुछ नहीं तुमने किया॥४॥

जो देश वस्तु वस्तुएँ देखी हजारों रंगनी।
सुर देख जिनको मोहते ऐसे निराले ढंग की।

यदि पद्मिनी या अप्सराएँ देख ली तो क्या हुआ।
देखी छबी नहीं आत्म की तो कुछ नहीं तुमने किया॥५॥

आसक्त होकर स्वाद में व्यंजन अनेकों खा लिये।
खाते रहे मिष्टान्न तीखे चटपटे भोजन किये।
जितने पदारथ हैं जगत में स्वाद सबका ले लिया।
चाखा नहीं यदि आत्मरस तो कुछ नहीं तुमने किया॥६॥

आसक्त होकर गन्ध में बागों बगीचों में फिरे।
सुन्दर लगाई वाटिका जो इन्द्र का भी मन हरे।
इत्रादि वस्त्रों में लगा घर बाह्य सब महका दिया।
नहीं गन्ध सूँघी आत्म की तो कुछ नहीं तुमने किया॥७॥

क्रीड़ा करी बरसों तलक नव युवतियों के साथ में।
ज्यों इन्द्र भोगे भोग क्या आय़ा तुम्हारे हाथ में।
जन्मे हजारों योनियों में काल फिर खा लिया।
क्रीडा करी नहीं आत्म से तो कुछ नहीं तुमने किया॥८॥

क्रीडा करो तो आत्म से चर्चा सुनो तो आत्म की।
पूजा करो तो आत्म की नहीं अन्य पूजा काम की।
'कौशल्य' छल को जानकर मुख मोड़ यदि सबसे लिया।
पहिचान लीना आत्म को तो कार्य सब तुमने किया॥९॥

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आसक्त होकर स्वाद में
व्यंजन अनेकों खा लिये।
खाते रहे मिष्टान्न तीखे
चटपटे भोजन किये।
जितने पदारथ हैं जगत में
स्वाद सबका ले लिया।
चाखा नहीं यदि आत्मरस
तो कुछ नहीं तुमने किया॥
क्रीडा करो तो आत्म से
चर्चा सुनो तो आत्म की।
पूजा करो तो आत्म की
नहीं अन्य पूजा काम की।
'कौशल्य' छल को जानकर

मुख मोड़ यदि सबसे लिया।
पहिचान लीना आत्म को
तो कार्य सब तुमने किया॥

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ